महर्षि परशुराम

(संक्षिप्त जीवन-दर्शन)



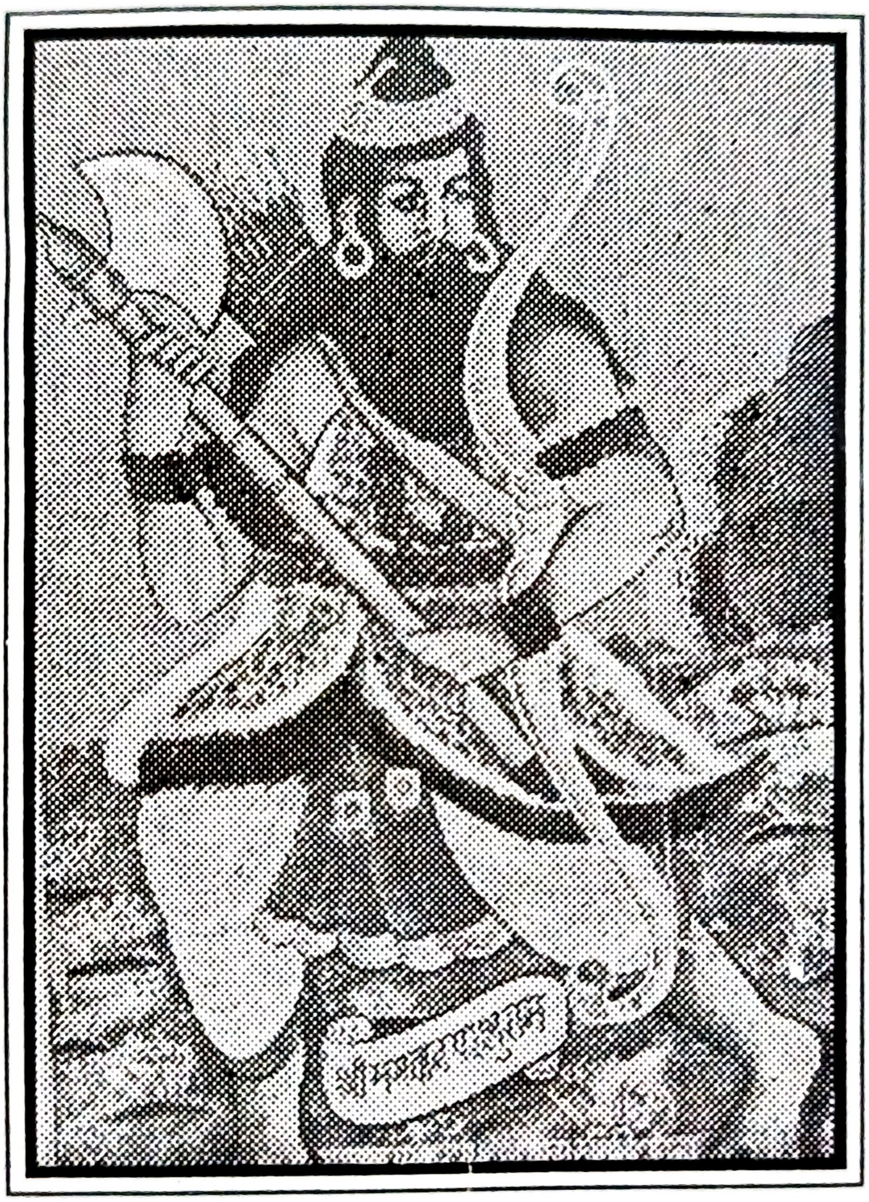
लेखक :

पं. जगत नरायन उपाध्याय

卐 श्री हरि: 卐

महर्षि परशुराम

(संक्षिप्त जीवन–दर्शन)



लेखक – पं. जगत नरायन उपाध्याय



पं. जगत नरायन उपाध्याय



श्रीमती कपूरी देवी
धर्मपत्नी पं. जगत नरायन उपाध्याय

विषय – सूची

विषय – सूची

लेखक का जीवन परिचय

एक होनहार बिरवा : श्री जगत नारायण उपाध्याय

उपनिषदयुगीन सुदूर अतीत में हमने इस संसार को एक चुनौती दी थी, न प्रजया धनेक त्यागेनैके अमृतत्व मानुसः अर्थात न तो सन्तति द्वारा और न सम्पत्ति द्वारा, वरन् केवल त्याग के द्वारा ही अमृत्व की उपलब्धि होती है। परमार्थ और आत्म लाभ के लिए भारतीय मनीषा त्याग पर सर्वाधिक बल देती है। भारतभूमि पर भोग की अपेक्षा त्याग को सर्वमान्य कहा गया है, ऐसी विभूतियों को ही परमात्मा अवतार के रूप में मान्यता मिली है, जिन्होंने अपने जीवन का सदुपयोग जन सामान्य को आंतक, उपद्रव और उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने के लिए किया और प्रतिदान में कुछ भी स्वीकार नहीं किया। ब्रह्म ऋषि श्री परशुराम सनातन धर्म की अवतार परम्परा में ऐसी ही महाविभूति हैं जिन्हें राम से पहले विष्णु अवतार के रूप में मान्यता प्राप्त है।

महाकाव्यों, पुराणों तथा श्रुतियों में ब्रह्म ऋषि परशुरामजी का उल्लेख अलग-अलग सन्दर्भों में तो उपलब्ध है, लेकिन उनके बारे में विस्तृत एवं सारगर्भित जानकारी के जिज्ञासुओं के लिए एक पुस्तकाकार रूप में पर्याप्त विवरण उपलब्ध कराने का पहला प्रयास श्री जगत नारायण उपाध्याय ने किया है, जो स्तुति योग्य हैं। निःसन्देह पुस्तक की तैयारी में उपाध्यायजी को धर्म ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन करना पड़ा है, जो ज्ञान सामर्थ्य पर आधारित अत्यन्त श्रमसाध्य है।

सत्रह जून सन् 1936 ई. को तत्कालीन आगरा जनपद (वर्तमान में फिरोजाबाद) के ग्राम बुर्ज साठी मौजा पचोखरा में एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में पण्डित डालचन्द जी के सुपौत्र तथा पण्डित ज्वाला प्रसाद जी के पुत्र रत्न के रूप में जन्मे पण्डित जगत नारायण उपाध्याय के मानस पर उच्च कुलीन ब्राह्मण परिवार के श्रेष्ठ संस्कारों तथा माता श्रीमती लाडवती के धर्म भीरु व्यक्तित्व का प्रभाव है, जिसने उन्हें आध्यत्मिक साहित्ष सृजन के लिए प्रेरित किया। आपकी अल उपाध्याय है तथा यह वशिष्ठ गोत्रिय सनाढ्य ब्राह्मण हैं।

प्रतिभा डिग्रियों की मुँहताज नहीं होती। श्री उपाध्याय का व्यक्तित्व इसका प्रमाण है। वर्ष 1957 ई. में ठाकुर वीरीसिंह हायर सैकण्डरी स्कूल टूण्डला (वर्तमान जनपद फिरोजाबाद) से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद साधनों के अभाव में आपकी आगामी शिक्षा बाधित हुई। तदोपरान्त आपने पुलिस मण्डल जिला गुना (म.प्र.) में पुलिस उप. निरीक्षक पद हेतु आवेदन

किया, समस्त औपचारिकताएँ भी पूरी कीं, लेकिन भर्ती प्रक्रिया निरस्त घोषित कर दी गयी। इससे जगत नारायण उपाध्याय हताश तो हुए, लेकिन संघर्ष की राह पर चलते रहे और सन् 1960 में आपने शासकीय विज्ञप्ति के आधार पर ग्राम पंचायत अधिकारी पद हेतु जिला नियोजन अधिकारी कार्यालय, आगरा में आवेदन किया, लिखित और मौखिक परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। यहाँ आपकी प्रथम नियुक्ति किरावली तहसील की कुककला न्याय पंचायत में ग्राम पंचायत अधिकारी के पद पर हुई। इसके बाद उन्होने (तत्कालीन आगरा जनपद) एत्मादपुर व सैंया विकास खण्ड़ों की विभिन्न न्याय पंचायतों में ग्राम पंचायत अधिकारी के रूप में वर्षों तक अपनी कार्य–कुशलता एवं उत्कृष्ट जन सेवा की भावना का परिचय दिया तथा ग्रामीण जनता के मध्य खासी लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की। वर्ष 1992 में शासकीय सेवा से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त आप अपनी कृषि एवं पशुहाट का कार्य सम्भालने के साथ निरन्तर आध्यात्मिक अध्ययन एवं साहित्य सृजन करते आ रहे हैं।

उष्कृष्ट सेवा भावना और साहित्य सृजन के साथ पण्डित जगत नारायण उपाध्याय अपने गाँव के बाहुबलियों तथा उनके हथकण्ड़ों से भी जूझ रहे हैं। आपके ज्येष्ठ भ्राता पण्डित लक्ष्मी नारायण उपाध्याय द्वारा सन् 1956 में पचोखरा ग्राम में जो पशुहाट प्रारम्भ की गयी थी, उसकी अनवरत प्रगति एवं ख्याति से चिढ़कर ग्राम के बाहुबलियों ने ग्राम सभा पचोखरा के माध्यम से हर प्रकार के हथकण्डे अपनाये, विभिन्न अदालतों में दर्जनों मुकदमे लगा दिये, जिनमें से कई अब भी विचाराधीन हैं, और पुस्तक लेखक आध्यात्मिक साहित्य सृजन के साथ इन मुक़दमों का सामना भी कर रहे हैं।

सद्‌गृहस्थ श्री उपाध्याय दो पुत्रियों और चार पुत्रों के पिता हैं। आपका विवाह सन् 1957 में ग्राम चुल्हावली टूण्डला (जनपद फिरोजाबाद) निवासी श्री रामचन्द्र श्रोत्रिय की सुपुत्री कपूरी देवी के साथ हुआ, जो कर्म, धर्म तथा आध्यात्मिक साहित्य सृजन में उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं।

श्री उपाध्याय का पूरा परिवार नितान्त धर्म भीरु है तथा धर्म प्रचार करते हुए इस परिवार ने व्यापक लोकप्रियता अर्जित की है। 15 जनवरी, 1976 को आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री लक्ष्मी नारायण उपाध्याय ने स्वामी करपात्री जी महाराज के शिष्य श्री माधव चैतन्य ब्रह्मचारी के श्री मुख से नौ दिन तक श्री रामचरित मानस कथा सस्वर गायन कराया, जिसे इस पुस्तक के लेखक ने अनवरत मन्त्र मुग्ध होकर सुना। भगवान श्रीराम की मनोहारी कथा के गायन

से श्री उपाध्याय इतने प्रभावित हुए कि उनकी धार्मिक रुचि गहन से गहनतम होती गयी। यह रुचि यहाँ तक बढ़ी कि आपने श्री रामचरित मानस, मानस पीयूष, आनन्द रामायण, वरवै रामायण, आध्यात्मिक रामायण, अद्भुत रामायाण, वाल्मीकि रामायण, गर्ग संहिता, ब्रह्म वैवर्त पुराण,महाभारत, पदम पुराण , कठोपनिषद नारीचितोपाख्यान, श्रीमद् भगवतगीता, श्रीमद् देवीभागवत, भागवात सुधा सागर, प्रेमसागर आदि ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया तथा उनके सार स्वरूप अनुपम कथाओं का संग्रह करके चार धार्मिक पुस्तकें प्रस्तुत कीं।

'ब्रह्म ऋषि परशुराम' नामक आपकी नवीनतम कृति उपरोक्त सभी ग्रन्थों का सार स्वरूप है। महर्षि परशुराम का जीवन परिचय संग्रहीत करने में आपने जो अथक परिश्रम किया है, वह धर्म प्रेमियों के लिए ऐसी धरोहर है, जिसका अन्यत्र उपलब्ध हो पाना कठिन है। विश्वास है कि परशुराम जी के आदर्श जीवन परिचय से सुदी पाठक गण तो लाभान्वित होंगे ही, अन्य धर्म जिज्ञासुओं की ज्ञान पिपासा को भी शान्त करेंगे।

राम अवतार शर्मा

कुल सचिव

आगरा विश्वविद्यालय

आगरा

दयालु राम "दयालु"

साहित्य कवि एवं संगीत्कार

दिनांक:20.12.1998
लोक संगीतज्ञ – आकाशवाँणी
आगरा
पँजीकृत सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग
फिरोजाबाद
पुरूस्कृत– सँस्कृत विभाग उ.प्र. सरकार
सत्यम् भवन जलेसर रोड,फिरोजाबाद ।

मैं अपने विचार श्री उपाध्याय के प्रति उजागर कर रहा हूँ । पाठकगण इन निम्नाँकित मेरे द्वारा प्रकट किये हुये विचारों को भी प्रेमपूर्वक पढ़ने का कष्ट अवश्य करें ।

पं. श्रीयुत जगतनरायन उपाध्याय द्वारा प्रणीत पौराँणिक कथा – कृति " महर्षि परशुराम" का आद्योपान्त अवलोकन कर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई । लेखक का यह प्रयास आधुनिक युग में एक अद्वितीय , वहुप्रशँसनीय, एवम् शास्त्र–स्वाध्याय संयुक्त कार्य प्रणाली का शुभद् परिणाम है । वे एक गहन, गम्भीर विचारक अध्ययन – अनुरक्त एवँ उत्कट – भावना – सँयुक्त व्यक्तित्व के धनी हैं । निर्लोभित – भावनाओं से इस कृति को सँजोने में कितनी श्रमसाधना की है, इससे मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ । अस्वस्थ अवस्था में भी उन्होंने विस्तृत अध्ययन व परिश्रम इनके कृतित्व में फलित हुआ है ।

महर्षि परशुराम के चरित्र चित्रण को सरल, सरस एवँ प्रभावमयी भाषा के लिये जव मुझे प्रेषित किया गया, तो मैने इसे अपना शुभोदय मानते हुये, पूर्ण मनोयोग से अवलोकन कर इस कृति को उत्कृष्ट स्वरूप प्रदान करने हेतार्थ प्रयास भी किया। मैने यत्र–तत्र प्रसँगों को रोचक एवँ बोधगम्यता के लिये काव्यो–वद्ध भी किया है।

अस्तु पं. जगत नरायन उपाध्याय की यह कृति महर्षि परशुराम के जीवन परप्रेक्ष्य में साँगोपांग प्रकाश बिखेरने वाली एक अनूँठी कृति है। इसके लिये मैं उन्हें साधुवाद ही नहीं अपितु उनके भविष्यत जीवन की मँगल कामना भी करता हूँ।

सद्भावनाओं सहित।

आपका –

दयालु राम "दयालु"

श्री परमात्मने नमः

।। आत्मानुरोध ।।

प्रायः मेरे समक्ष भगवतकथानुरागी महानुभावों के पौराणिक प्रसंगों पर विभिन्न प्रकार के प्रश्न आते रहे हैं । जिन्हें मैं अपना भाग्योदय पुण्योदय या सुसंस्कारों का शुभद्योग ही मानता हूँ । क्योंकि इन प्रश्नों के उत्तरान्वेष्ण में मुझे शास्त्रस्वाधाय करने का सुअवसर ही नहीं मिला अपितु, एक अद्भुत अनिवर्चनीय आनन्दानुभूति भी हुयी है । मैं भी भाव विभोर होकर समय – समय पर उन पवित्रतम उपाख्यानों के उत्तर प्रत्योत्तर अपने अल्प स्वाध्याय – क्षमतानुसार देता रहा हूँ । संतोषप्रद शंका समाधान हेतार्थ प्रमाण स्वरूप पौराणिक श्रीग्रन्थों की भी अतीव आवश्यकता रही है ।

वस्तुतः इस संकलन में मेरा अपना कुछ भी नहीं है । हाँ यदि कुछ है तो वह श्रीमद्भागवत् महापुराण, श्रीशिव पुराण , श्रीपद्मपुराण , श्रीमद्देवी भगवत, श्री भगवत सुधा सागर, श्री गर्गसंहिता, श्री मानस पीयूष , श्रीमद्भगवद्गीता, श्री वाल्मीकि रामायण, श्री रामचरित मानस, श्री आनन्द रामायण, श्री अद्भुत रामायण, श्री महाभारत आदि आदि ग्रन्थों का ही महाप्रसाद है ।

प्रस्तुत कृति पौराणिक कथा शँका समाधान में उपर्युक्त श्रीग्रन्थों के अध्यायाँक व श्लोकाँक तथा पृष्ठाँक भी अँकित किये गये हैं ताकि जिज्ञासु महानुभाव अपने सँदेह का स्वमेव सहज निवारण कर सकें ।

अस्तु मनीषी वृन्दों से अनुरोध है कि इसमें हुई त्रुटियों को अपनी दार मनोवृत्ति से मुझे अवगत करायें । ताकि अगले सँस्करण में ंशोधन किया जा सके । अन्त में इस कृति में श्री माधव चैतन्य ह्ममचारी सद्गुरू निवासी वृन्दावन धाम ने अपना अमूल्य समय देकर ो सहँयोग मुझे प्रदान किया है उसके लिये मैं पुनः पुनः उन्हें साधुवाद ता हूँ ।

भवनिष्ठ–

पं.जगतनरायण उपाध्याय

।। श्री गणेश चिन्तन ।।

एक दन्तं शूपकंर्ण गजवक्त्रं चतुर्भुजं ।
पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत् सिद्धि विनायकम् ।।
ध्यायेद् गजाननं देवं तप्तकांचन संनिभम् ।
चतुर्भुजं महाकायं सर्वाभरण भूषितम् ।।
दन्ता क्ष्माला परशु पूर्ण मोदक धारिणम् ।
मोदका सक्त शुण्डाग्रमेकदन्तं विनायकम् ।।

अर्थ:– जिनके एक दांत, सूप के समान विशाल कान हाथी के सदृस मुख और चार भुजायें हैं, जो अपने हाथों में पास और अंकुश धारण करते हैं , ऐसे सिद्धिविनायक देव का मैं ध्यान करता हूँ । जिनकी अंग कान्ति तपाये हुय स्वर्ण के समान दीप्तिमय है, जो चार भुजाधारी, विशालकाय और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित है, उन गजानन देव का ध्यान करता हूँ । जो अपने हाथों में दन्त, अक्षमाला, परशु और मोदक से भरा हुआ पात्र धारण करते हैं, जिनकी सूँड़ का अग्र भाग लड्डू पर लगा है , उन एक दन्त विनायक का मैं ध्यान करता हूँ ।

।। सरस्वती वन्दना ।।

शुक्लां व्रह्म विचार सार पर माध्यां जगद् व्यापिनी, वीणां पुस्तक धारिणीमभयदां जाड्यान्ध कारापहाम् हस्ते स्फटिक मालिकां विद्धतीं पदमासने संस्थितात्म वन्देतां परमेश्वरी भगवती वृद्धिप्रदामशारदाम् ।।

अर्थ :– सफेद रंग वाली, सम्पूर्ण चराचर जगत में व्याप्त, आदि

शक्ति परब्रह्म के विषय में किये गये विचार एवं चिन्तन के सार को धारण करने वाली अभयदायिनी, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाली, हाथ में वीणा , पुस्तक और स्फटिक की माला लिये हुये पद्मासन पर विराजित बुद्धि देने वाली , ऐश्वर्य से अलंकृत मां सरस्वती देवी की मैं वन्दना करता हूँ ।

।। शिव वन्दना ।।

वामाके च विभाति भूधरसता देचपगा मस्तके ।

भाले वाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।।

सो ऽयं भूति विभूषणं सुरवरः सर्वाधियः सर्वदा ।

सर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ।।

अर्थ :— जिनकी वायीं अंग में पारवती जी, मस्तक में द्वितीया का चन्द्रमा, गले में विष और हृदय पर नागराज विराजमान हैं , विभूति रमाये देवताओं में उत्तम ,सवके स्वामी, सदां रहने वाले , माया के नाशक , सब में व्याप्त कल्याणस्वरूप और चन्द्रमा के समान, गौर कान्तिवाले , श्री महादेव जी मेरी रक्षा करें ।

।। श्री गुरू वन्दना ।।

वन्दें वोधमयं नित्यं गुरूं शंकररूपिणम् ।

यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वन्दते ।।

गुरूव्रह्मा गुरूविष्णु गुरू देवो महेश्वरः

गुरूः साक्षात् परं व्रह्म तस्मै श्रीगुरूवेनमः ।।

अर्थः- ज्ञानमय , नित्य, शंकर रूपी गुरू की मैं वन्दना करता हूँ । जिनके आश्रित होने से ही टेड़ा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है । गुरू ही व्रह्मा हैं गुरू ही विष्णु है गुरू देव ही शिव है गुरू साक्षात् परमव्रह्म- हैं ऐसे श्री गुरूदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ।

।। श्री हनुमान जी कीं बँन्दना ।।

अतुलित बलधामं हेमशैलाभ देहं,

दनुज वन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।

सकल गुण निधानं वानराणाम धीशं ,

रघुपति प्रिय भक्तं वात जांत नमामि ।।

अर्थः- अतुल बल के धाम , सोने के पर्वत (सुमेरू) के समान कान्ति युक्त शरीर वाले, दैत्यरूपी वन को ध्वंश करने के लिये अग्नि रूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य , सम्पूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी श्री रघुनाथ जी के प्रिय भक्त पवन पुत्र श्री हनुमान जी को मैं प्रणाम करता हूँ ।

।। श्री राम चन्द्र जी की बँन्दना ।।

सुग्रीवमित्रं परमं पवित्रं ,

सीताकलत्रं नव मेघ गात्रम् ।

कारूण्य पात्रं शत पत्र नेत्रं,

श्री राम चन्दँ सततँ नमामि ।।

संसार सारं निगमँ प्रचारँ,

धर्मावतारँ हृत भूमि भारम् ।

सदाविकारँ सुखसिन्धु सारँ

श्री राम चन्द्रँ सततँ नमामि।।

अर्थः– सुग्रीम के मित्र , परं पावन , सीता के पति , नवीन मेघ के समान शरीर वाले , करूणा के सागर और कमल के सदृश नेत्र वाले श्री राम चन्द्र जी की मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ ।

असार संसार में एक मात्र सारवस्तु वेदों का प्रचार करने वाले , धर्म के साक्षात् अवतार , भू भार का हरण करने वाले , सदां अविकृत रहने वाले, और आनन्द सिन्धु के सारभूत श्री राम चन्द्र को मैं सदा नमस्कार करता हूँ ।

।। श्री सीता जी की वन्दना ।।

उदभ्वस्थिति संहार कारिणीं क्लेशहारिणीम्।

सर्वश्रेयस्करी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ।।

अर्थः– उत्पत्ति , स्थिति (पालन) और संहार करने वाली , कलेशों को हरने वाली तथा सम्पूर्ण कल्याणों को करने वाली, श्री राम चन्द्र जी की प्रियतमा श्री सीता जी को मैं नमस्कार करता हूँ ।

।।श्री कृष्ण स्तवन ।।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने ।।

वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लास समुत्सुकम् ।

रास मण्डील मध्यस्थं नमामि रासिकेश्वरम् ।।

अर्थ:– गऊओं तथा ब्राह्मणों के हितैषी तथा समस्त संसार का भला चाहने वाले हैं , उन सच्चिदानन्दमय गोविन्द को बार बार नमस्कार है । वृन्दावन में रमण करने वाले, रासोउल्लास के उत्सुक, रास मंडली के मध्य (सुशोभित) रसिकेश्वर (श्री कृष्ण देव) को नमस्कार है ।

।। राधा जी की बँन्दना ।।

वन्देराधापदम्भोजं ब्रह्मादिसुर वन्दितम् ।

यत्कीर्ति कीर्तिननैव पुनाति भुवन त्रयम् ।।

नमो गोकुल वासिन्यै राधिकायै नमो नमः ।

शत श्रंगनिवासिन्यै चन्द्रावन्यै नमो नमः ।।

अर्थ:– मैं श्री राधा के उन चरण कमलों की वन्दना करता हूँ , जो ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा वन्दित हैं, तथा जिनकी कीर्ति के कीर्तन से ही तीनों भुवन पवित्र हो जाते हैं । गोकुल में वास करने वाली राधिका को वारम्वार नमस्कार है, शतश्रंग पर्वत पर निवास करने वाली चन्द्रवती को नमस्कार है नमस्कार है ।

।।श्री कृष्ण स्तवन ।।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने ।।

वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लास समुत्सुकम् ।

रास मण्डील मध्यस्थं नमामि रासिकेश्वरम् ।।

अर्थः– गऊओं तथा ब्राह्मणों के हितैषी तथा समस्त संसार का भला चाहने वाले हैं, उन सच्चिदानन्दमय गोविन्द को बार बार नमस्कार है । वृन्दावन में रमण करने वाले, रासोउल्लास के उत्सुक, रास मंडली के मध्य (सुशोभित) रसिकेश्वर (श्री कृष्ण देव) को नमस्कार है ।

।। राधा जी की बँन्दना ।।

वन्देराधापदम्भोजं व्रह्मादिसुर वन्दितम् ।

यत्कीर्ति कीर्तिननैव पुनाति भुवन त्रयम् ।।

नमो गोकुल वासिन्यै राधिकायै नमो नमः ।

शत श्रंगनिवासिन्यै चन्द्रावन्यै नमो नमः ।।

अर्थः– मैं श्री राधा के उन चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो व्रह्मा आदि देवताओं द्वारा वन्दित हैं, तथा जिनकी कीर्ति के कीर्तन से ही तीनों भुवन पवित्र हो जाते हैं । गोकुल में वास करने वाली राधिका को वारम्वार नमस्कार है, शतश्रंग पर्वत पर निवास करने वाली चन्द्रवती को नमस्कार है नमस्कार है ।

महर्षि परशुराम
(संक्षिप्त जीवन – दर्शन)

श्री गणेशाय नमः

जेहिं सुमिरत सिद्धि होई ।
गण नायक करिवर वदन ।।
करउ अनुग्रह सोर ।
बुद्धि राशि शुभ गुण सदन ।।

वन्दौं पवन कुमार खलवन पावक ज्ञान धन ।
जासु हृदय आगार, बसहु राम सर चापधर ।।

गाधि – जमदग्नि – विश्वामित्र व महर्षि परशुराम की जन्म कथाओं का संक्षिप्त जीवन परिचय की कथाओं का प्रारम्भ :

श्री राम चन्द्र जी ने विश्वामित्र जी से पूछा कि हे गुरूजी आप मुझे अपनी जन्म कथा वताने की अनुकम्पा करें । राम का प्रश्न सुनकर श्री विश्वामित्र जी अपनी जन्म की कथा श्री राम चन्द्र जी को सुनाने लगे ।

ऋषि विश्वामित्र बोले कि हे श्री राम चन्द्र जी सतयुग में ब्रह्मा के वंश में एक "कुश" नामक ब्रह्म ऋषि हुये थे । इनका विवाह विदर्व देश के राजा की राजपुत्री "वैतर्वी" के साथ हुआ था । कुश ने अपनी प्रिय

भार्या वैतर्वी से ही चार पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम कुशनाम, कुशाम्भू असूर्त्तरजस, वशु रखे गये । उन्होंने अपने पुत्र कुशनाभ का विवाह इन्द्र की अप्सरा "धृताची" के साथ किया ।

विश्वामित्र जी बोले कि हे राम कुशनाभ ने समय आने पर अपनी धर्मपत्नी धृताची से सर्वप्रथम सौ पुत्रियों को जन्म दिया । ये सभी सुन्दर स्वरूप बाली थीं । एक दिन ये सभी कन्याऐं वस्त्राभूषणों से सुशोभित होकर अपने पिता कुशनाभ के सुन्दर उपवन में भ्रमण करने के लिये चली गयी । वहीं पर इन कन्याओं ने नृत्यगान आरम्भ कर दिया , इनके नृत्यगान से प्रभावित होकर तत्क्षण वायु देवता ने आकर इन सभी कुशनाभ की कुमारी पुत्रियों से अपने साथ विवाह करने के लिए आग्रह किया ।

हे राम वायु देवता की बातें सुनकर कुशनाभ की सभी कन्याओं ने उनसे कहा कि हे सुर श्रेष्ठ आप प्राण वायु के रूप में समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में निवास करते हो । इसी कारण आप सभी के मन के भावों को भलीभांति जानते हो । अतः आपको यह भी ज्ञात होगा कि हम सभी बहिनों के मन में आपके प्रति तनिक भी अनुराग नहीं है । और हम सभी बहिनें आपके अद्भुत प्रभाव को भी जानती हैं । ऐसी स्थिति में यह अनुचित विवाह का प्रस्ताव करके आप हमारा अपमान क्यों कर रहे हैं ।

हे राम, वे पुत्रियाँ वायुदेवता से पुनः बोलीं कि , हे पवन देव हम सभी कुशनाभ की पुत्रियाँ शाप देकर आपको वायु पद से भ्रष्ट कर सकती हैं । परन्तु अपने तपको सुरक्षित रखने के लिये हम सभी आपको शाप नहीं दे रही हैं । हमारे पिताजी हम सबको जिस किसी के हाथों में समर्पित करेगें वही वही हम सभी के पति देवता होगें । कुशनाभ की सभी

कन्याओं की बातें सुनकर पवन देव कुपित हो गये और उन कुशनाभ की सभी कन्याओं के शरीरों में प्रविष्ट हो गये और उन सभी राजपुत्रियों के शरीरों को वक्र कर दिया ।

हे राम, पवन देव द्वारा कुवजत्व प्राप्त करके वे सभी कन्यायें, वा। ाा चलकर, राज भवन में अपने पिता कुशनाभ के पास पहुंच गयीं, और उन्हें कुवजत्व प्राप्त होने का सारा वृतान्त वता दिया और बोलीं कि हे पिताजी वायु देवता ने हमारे बाग में आकर हम सभी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया था । परन्तु हम सभी ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था । इसी कारण कुपित होकर उन वायु देवता ने हम सभी को कुवरारी पन प्रदान कर दिया है । अपनी सभी कन्याओं की बातें सुनकर कुशनाभ ने अपनी सभी सौ कन्याओं का व्रहमदत्त के साथ विवाह कर दिया ।

प्रश्नः— ब्रहमदत्त कौंन थे जिनके साथ कुशनाभ ने अपनी सौ कन्यायों का विवाह किया था ?

उत्तरः— श्री राम चन्द्र जी के पूछने पर विश्वामित्र जी उनसे कहने लगे कि हे श्रीराम अपनी सभी कन्याओं की बातें सुनकर कुशनाभ अपनी पुत्रियों से कहने लगे कि हे पुत्रियों तुम सभी ने उस वलात्कार की इच्छा करने वाले पवन देव को शाप न देकर मेरे कुल की मान मर्यादा को रखा है। अब तुम सभी भवन में जाकर निवास करो । मैं तुम सभी के विवाहों का सम्भार शीघ्र करूँगा । अपने पिता जी की बातें सुनकर वे सभी राज पुत्रियां राजभवन में जाकर निवास करने लगी ।

विश्वामित्र बोले कि हे राम, उन्ही दिनों "चूली" नाम के एक

ब्रह्मचारी ब्रह्म चिन्तन रूप तपस्या में रत थे । ब्रह्म तप में रत जानकर एक गंधर्व की कन्या "सौमदा" ब्रह्मचारी चूली की सेवा में आकर संलग्न हुई । सौमदा की मां का नाम उर्मिला था । गन्धर्वी सौमदा की सेवा से, "ब्रह्मचारी चूली" अति प्रसन्न हुए । इसी कारण उन्होने "सौमदा" से मनोवांछित वर मांगने को कहा ।

विश्वामित्र जी बोले कि हे आर्य ब्रह्मचारी चूली की बातें सुनकर गन्धर्वी सौमदा ने उनसे वर मांगा कि हे ब्रह्मचारी मैं अभी कुमारी हूँ और आगे चलकर कुमारी ही रहूँ मुझे आप प्रथम वरदान यही दीजिये और तप की शक्ति से आप मुझे ब्रह्मनिष्ठ पुत्र प्रदान कीजिये दूसरा वरदान आप मुझे यही दीजिये । ब्रह्मचारी चूली ने सौमदा द्वारा मांगे गये दोनो वरदान उसे तथास्तु कहकर प्रदान कर दिये । तत्पश्चात् ब्रह्मचारी चूली ने अपने तपोवल से एक पुत्र अपनी मानसिक शक्ति से उत्पन्न करके "सौमदा" को प्रदान कर दिया । चूँकि ब्रह्मचारी चूली ने इस पुत्र की उत्पत्ति तपोवल से व मानसिक शक्ति द्वारा की थी । इसी कारण इसका नाम ब्रह्मचारी चूली ने ब्रह्मदत्त रखा था ।

विश्वामित्र जी आगे फिर बोले कि हे श्रीराम सौमदा गंधर्वी का पुत्र "ब्रह्मदत्त" अब "काम्पिल्या" नामक नगरी में निवास करने लगा । यह नगरी अमरावती के समान सुन्दर थी । कुश के पुत्र कुशनाभ ने अपनी सभी सौ कन्याओं का विवाह इन्ही ब्रह्मदत्त के साथ कर दिया था । विवाह काल में उन कुशनाभ की कन्याओं के हाथों का ब्रह्मदत्त के हाथों से स्पर्श होते ही वे सभी कुवज़त्व के दोष से मुक्त होकर, पूर्ववत उत्तम सौन्दर्य से सम्पन्न हो गयी । अपनी सभी कन्याओं को पूर्ववत सुन्दर

देखकर कुशनाभ अत्यन्त प्रसन्न हुये , तत्पश्चात् वहुत सा दान दहेज में देकर अपनी सभी पुत्रियों को कुशनाभ ने ब्रह्मदत्त के साथ विदा कर दिया । उर्मिला नामक गन्धर्वी की पुत्री सौमदा अपने मानसी पुत्र ब्रह्मदत्त का कुशनाभ की सौ कन्यायों के साथ विवाह सम्पन्न देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुयी और अपने पुत्र व पुत्रवधुओं के साथ सुखपूर्वक काम्पिल्या नामक नगरी में निवास करने लगी ।

हे राम पिता कुश की आज्ञा से कुशनाभ ने महोदय नामक नगर का निर्माण करके उसी नगर के राजमहल में निवास करते थे । और कुशाम्बू ने "कौशाम्बी" नामक नगर का निर्माण किया तथा उसी में राजमहल का निर्माण करके रहते थे । इसी प्रकार असूत्तरजस ने धर्मरन्य नामक नगरी का निर्माण किया और उसी में राजधानी बनाकर निवास करते थे । इसी प्रकार वसू ने भी पिता की आज्ञा से गिरिवृज नामक नगरी का निर्माण किया और उसी में राजधानी निर्माण करके सपिरवार निवास करते थे । इस प्रकार कुश के चारों पुत्र उपरोक्त चारों नगरों में निवास करते थे ।

गाधि की उत्पत्ति :

मुनि विश्वामित्र बोले कि हे राम कुशनाभ ने अपनी सौ पुत्रियों का विवाह ब्रह्मदत्तं के साथ करने के पश्चात्, पिता कुश की आज्ञा से एक पुत्रेष्ठि यज्ञ का अनुष्ठान किया था, जिसके फलस्वरूप कुशनाभ ने अपनी प्रिय पत्नी , इन्द्र की अप्सरा धृताची से एक गाधि नामक पुत्र उत्पन्न किया था । कुश ने अपने पुत्र कुशनाभ को एक बार गाधि नामक पुत्र प्राप्त करने का वरदान भी दिया था । अन्त में , कुश अपनी पत्नी वैतर्भी

को अपने पुत्र कुशनाभ के पास छोड़कर तपोवन को चले गए वहीं तप में लीन होकर स्वर्ग की प्राप्ति की थी ।

विश्वामित्र बोले कि हे राम कुश के कुशनाभ हुये कुश के वंश मे पैदा होने के कारण मैं "कौशिक" भी कहलाता हूँ । मेरी मौंता का नाम प्रमिला है । मेरे पिता का नाम गाधि था जो कुशनाभ के पुत्र थे । मेरी एक ज्येष्ठ वहिन थी उसका नाम सत्यवती था । सत्यवती रिचीक नामक ऋषि को व्याही थी । रिचीक ऋषि भृगुवंशी ब्राह्मण थे । रिचीक ऋषि ने सत्यवती से क्षत्रिय श्रेष्ठ जमदग्नि को उत्पन्न किया । जमदग्नि का विवाह राजा प्रजासैंन की पुत्री रैंणुका के साथ हुआ था । रैणुका को किन्ही किन्ही शास्त्रों में रैंणु ऋषि की कन्या भी बताया गया है ।

हे राम जमदग्नि ने रैंणुका से अधुर्य, उदगात, होता, व्रह्मा और परशुराम को उत्पन्न किया था । इन सबसे परशुराम छोटे थे । श्री परशुराम में श्री वासुदेव का अंश था । सत्यवती , जमदग्नि को जन्म देकर शरीर त्यागकर स्वर्ग चली गयी थी । बाद में भूतल पर कौशिकी नाम की नदी होकर प्रवाहित होने लगी थी । इसी कौशिकी नदी के तट पर ही हे श्री राम , मैं अपना आश्रम बनाकर निवास कर रहा हूँ क्योंकि मेरी बहिन सत्यवती ही , कौशिकी नदी होकर इस पवित्र भारत भूमि पर प्रवाहित होती है । हे राम जो आपने मुझसे पूछा था वह सब कुछ मैने आपको सूक्ष्म रूप में बतला दिया है ।

नोटः उपरोक्त कथा बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड , सर्ग 32 , 33 व 34 तथा पृष्ठ संख्या 63 से लेकर 67 तक अनवरत हनुमान प्रसाद पोद्दार की टीका में से देखिये ।यह मैने आपके समक्ष गाधि जमदग्नि

विश्वामित्र व परशुराम जी की जन्म कथाओं का सूक्ष्म रूप में वर्णन कर दिया है । आशा है आप एकाग्र चित्त होकर इसका पठन – पाठन करके अनुग्रहीत होगें ।

गाधि, जमदग्नि, विश्वामित्र व परशुराम के जन्मों की द्वितीय जन्म कथाओं का सँक्षिप्त वर्णन

इस कथा को महाभारत के द्वितीय खण्ड , वन पर्व , तीर्थयात्रा पर्व ,.पृष्ठ संख्या 1276 से 1278 तक , स्लोक संख्या 19 से 29 तक व 34 से 42 तक के अध्याय पंचदशाधिक शतत मोअध्याय का अवलोकन करें।

उपरोक्त कथा का आरम्भ :

1– अब तक इस भूतल पर राम तीन ही हुये हैं श्री परशुराम जी इस भूतल पर पैदा हुए जो पुराणों में विष्णु अंश से सोलहवां अवतार बताये गये हैं । ये सतयुग में पैदा हुये हैं ।

2– इसी भूतल पर दूसरे राम विष्णु अंश से प्रकट हुये इनका प्राकट्य त्रेता के चौथे चरण में हुआ था । इनकी माँता का नाम कौशिल्या तथा पिता का नाम दशरथ था जो अयोध्या नगरी के महाराजा थे ।

3– द्वापुर के चौथे चरण में सहसा अवतार श्री बलराम जी का जन्म मथुरा में रोहिणी के गर्भ से वसुदेव के अंश से हुआ था । इस प्रकार उपरोक्त आज तक तीन ही राम इस भूतल पर अवतरित हुये हैं । इन्होने

इस भूतल पर प्रकट होकर सारे संसार का भूभार हरण किया है ।

सार रूप में तो यह कथा पूर्ववत कुछ आगे तक चलेगी फिर इसका रूप परिवर्तित हो जायेगा । सुनिये – ब्रह्मा के मानसी पुत्र कुश प्रजापति हुये इनका विवाह विदर्भ देश के राजा की राजपुत्री वैतर्वी के साथ हुआ था । कुश ने वैतर्वी से कुशनाभ, कुशाम्बू, असूर्तरजस, वसु , चार पुत्र उत्पन्न किये । कुश ने अपने पुत्र कुशनाभ का विवाह इन्द्र की अप्सरा धृताची के साथ किया था । कुशनाभ ने सर्वप्रथम अपनी भार्या धृताची से सौ पुत्रियों को जन्म दिया था । इन सभी पुत्रियों का विवाह कुशनाभ ने ब्रह्म ऋषि ब्रह्मदत्त के साथ कर दिया था ।

तत्पश्चात् कुशनाभ ने अपने पिता कुश की आज्ञा से एक पुत्रेष्ठि यज्ञ किया था जिसके फलस्वरूप कुशनाभ ने अपनी पत्नी धृताची से एक गाधि नामक पुत्र उत्पन्न किया था । यहां तक यह कथा प्रथम कथा से मिलती जुलती है । अब आगे की कथा का प्रसंग नये ढंग से लिखते हैं उसको ध्यान पूर्वक सुनिये ।

गाधि कान्य कुब्ज देश के महाबली राजा थे । वे अपनी राजधानी छोड़कर पत्नी सहित सघन वन में तप को चले गये थे । इनकी राजधानी भी कान्य कुब्ज नगर में ही थी । गाधि ने बनोवास काल में ,एक पुत्री को जन्म दिया जिसका नाम उन्होने सत्यवती रखा था । यह कन्या भृगु ऋषि के पुत्र रिचिक ऋषि को व्याही गयी थी । भृगु ब्रह्मा के मानसी पुत्र थे । इसी कारण रिचीक ऋषि भी भृगुवंशी ब्राह्मण कहलाते थे ।

एक बार रिचीक ऋषि भ्रमण करते करते गाधि के आश्रम में पहुंच गये , रिचीक ऋषि ने उनके आश्रम में एक परम सुन्दर गुणवती गाधि की कन्या सत्यवती को देखा । इस कन्या को देखकर, रिचीक ऋषि इस परम सुन्दरी कन्या को देखकर उस पर मुग्ध हो गये, तो रिचीक ऋषि ने गाधि से प्रार्थना की कि, हे राजन आप अपनी इस परम सुन्दरी पुत्री का विवाह मेरे साथ कर दें तो बहुत सुन्दर संयोग मेरा व आपकी पुत्री का होगा । रिचीक ऋषि की बातें सुनकर गाधि ने सोचा कि देखने में रिचीक ऋषि अध्यात्मिक जान पड़ते हैं, परन्तु मैं इनकी परीक्षा अवश्य करूंगा । परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरान्त ही मैं अपनी इस परम सुन्दरी पुत्री का विवाह इन महान तपस्वी के साथ कर दूँगा ।

रिचीक ऋषि का विवाह का प्रस्ताव सुनकर गाधि बोले कि हे ऋषि जी हमारे कुल में वर पक्ष से शुल्क लेकर ही विवाह करने का विधान है यदि आप मुझे एक हजार श्याम कर्ण घोड़े शुल्क में लाकर दे दो तो मैं अपनी इस सुपुत्री सत्यवती का विवाह आपके साथ सम्पन्न कर दूँगा ।

श्याम कर्ण घोड़े की पहिंचान :

श्याम कर्ण घोड़े का शरीर सफेद व पीला होता है और दोनों कॉन काले होते हैं । श्यामकर्ण घोड़ा हजारों में एक होता है परन्तु रिचीक ऋषि ने गाधि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । और श्याम कर्ण घोड़ों की प्राप्ति के लिये गंगा जी के तट पर जाकर वरूण देव के तप में लीन हो गये । रिचीक ऋषि के तप से प्रसन्न होकर वरूण देव मनुष्य का शरीर धारण करके रिचीक ऋषि के सामने प्रकट हो गये और बोले हे भृगुनन्दन मनोवांछित वर मांगिये । जो मांगोगे मैं वही आपको प्रदान

करूंगा । वरूण देव की वार्ता सुनकर रिचीक ऋषि के नेत्र खुल गये और वरूण देव को सामने देखकर उन्होने उनको साष्टाँग प्रणाम किया और उनसे बोले कि हे जल के देवता, आप मेरे मन की सबकुछ जिज्ञासायें जानते हो , मुझे एक हजार श्याम कर्ण घोड़े चाहिये ।

रिचीक ऋषि की बातें सुनकर वरूण देव बोले कि हे रिचीक इस भागीरथी के तट पर जहाँ कहीं भी खड़े होकर तुम आकाँक्षा करोगे वहीं पर तुमको भागीरथी में से प्रकट होकर एक हजार श्याम कर्ण घोड़े आपको प्राप्त हो जावेगें । यही वरदान देकर वरूण देव अपने लोक को चले गये । और रिचीक ऋषि उसी स्थान पर हाथ जोड़कर गंगा जी से एक हजार श्याम कण घोड़े प्राप्त करने की प्रार्थना करने लगे । तत्क्षँण गंगा जी की बीच धारा में से एक के पीछे एक घोड़े प्रकट होकर एक हजार श्याम कर्ण घोडे गंगाजी में से प्रकट होकर रिचीक ऋषि के पास आकर खडे हो गये । तभी रिचीक ऋषि उन एक हजार श्याम कर्ण घोड़ों को अपने साथ लेकर क्षत्रिय श्रेष्ठ गाधि के आश्रम पर जा पहुँचे । और एक हजार श्याम कर्ण घोड़े रिचीक ऋषि ने गाधि को समर्पित कर दिये गाधि एक हजार श्याम कर्ण घोड़ों को प्राप्त करके आश्चर्य में पड़ गये कि रिचीक ऋषि बहुत बड़े तपस्वी हैं । इन्होने अपने तपोवल से एक हजार श्याम कर्ण घोडे वरूण देव की तपस्या से भागीरथी से प्राप्त किये हैं और लाकर मुझे शुल्क रूप में प्रदान किये हैं । श्याम कर्ण घोड़ों को प्राप्त करके धूमधाम के साथ गाधि ने अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह भृगुनन्दन महान योगी रिचीक ऋषि के साथ सम्पन्न कर दिया ।

करूंगा । वरूण देव की वार्ता सुनकर रिचीक ऋषि के नेत्र खुल गये और वरूण देव को सामने देखकर उन्होने उनको साष्टाँग प्रणाम किया और उनसे बोले कि हे जल के देवता, आप मेरे मन की सबकुछ जिज्ञासायें जानते हो , मुझे एक हजार श्याम कर्ण घोड़े चाहिये ।

रिचीक ऋषि की बातें सुनकर वरूण देव बोले कि हे रिचीक इस भागीरथी के तट पर जहाँ कहीं भी खड़े होकर तुम आकाँक्षा करोगे वहीं पर तुमको भागीरथी में से प्रकट होकर एक हजार श्याम कर्ण घोड़े आपको प्राप्त हो जावेगें । यही वरदान देकर वरूण देव अपने लोक को चले गये । और रिचीक ऋषि उसी स्थान पर हाथ जोड़कर गंगा जी से एक हजार श्याम कण घोड़े प्राप्त करने की प्रार्थना करने लगे । तत्क्षँण गंगा जी की बीच धारा में से एक के पीछे एक घोड़े प्रकट होकर एक हजार श्याम कर्ण घोडे गंगाजी में से प्रकट होकर रिचीक ऋषि के पास आकर खडे हो गये । तभी रिचीक ऋषि उन एक हजार श्याम कर्ण घोड़ों को अपने साथ लेकर क्षत्रिय श्रेष्ठ गाधि के आश्रम पर जा पहुँचे । और एक हजार श्याम कर्ण घोड़े रिचीक ऋषि ने गाधि को समर्पित कर दिये गाधि एक हजार श्याम कर्ण घोड़ों को प्राप्त करके आश्चर्य में पड़ गये कि रिचीक ऋषि बहुत बड़े तपस्वी हैं । इन्होने अपने तपोवल से एक हजार श्याम कर्ण घोडे वरूण देव की तपस्या से भागीरथी से प्राप्त किये हैं और लाकर मुझे शुल्क रूप में प्रदान किये हैं । श्याम कर्ण घोड़ों को प्राप्त करके धूमधाम के साथ गाधि ने अपनी पुत्री सत्यवती का विवाह भृगुनन्दन महान योगी रिचीक ऋषि के साथ सम्पन्न कर दिया ।

गाधि ने अपनी पुत्री व जामाँता को अपने आश्रम पर ही रखा, इनका आश्रम गंगा जी के किनारे पर ही था । कान्यकुब्ज नगर भी गंगा के किनारे ही बसा है । गंगा जी के किनारे रिचीक ऋषि ने श्यामकर्ण घोड़े प्राप्त करने के लिये वरूण भगवान का तप किया था और वरूण देव के वरदान से ही श्याम कर्ण घोड़े जिस स्थान से रिचीक ऋषि ने प्राप्त किये थे उस स्थान का नाम गँगा किनारे अश्वतीर्थ पड़ गया है । रिचीक ऋषि का विवाह भी गँगा जी के तट पर ही हुआ था ।

एक बार भृगु जी अपनी पुत्रवधू व पुत्र रिचीक को देखने के लिये गाधि की राजधानी कान्यकव्ज नगर में आये । सत्यवती ने ससुर को साष्टाँग प्रणाम किया और उन्हें आसन पर बैठाया । उसी समय आसन पर बैठकर भृगु जी ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्रवधू सत्यवती से वरदान मांगने को प्रेरित किया तो सत्यवती ने उनसे अपनी माँता को व अपने लिये एक एक सत्पुत्र प्राप्त करने की याचना की । भृगुजी ने उन्हें तथास्तु कहकर सत्यवती से कहा कि हे बेटी तुम दोनो को एक एक सत्पुत्र की अवश्य ही प्राप्ति होगी ।

सत्यवती को वरदान देकर भृगु जी उससे कहने लगे कि हे देवी ऋतुकाल आने पर तुम्हारी माँता , पीपल के वृक्ष का और तुम गूलर के वृक्ष का आलिंग्न करना । इस कार्य के पूर्ण होने पर मुझे सूचित करना उस समय तक मैं आपके आश्रम में ही निवास करूंगा । दैवगति से सत्यवती व उसकी माँ को एक ही साथ ऋतुकाल आ गया । परन्तु सत्यवती व उसकी माँ ने पीपल व

गूलर के वृक्षों के आलिंग्न करने में हेराफेरी कर दी अर्थात् सत्यवती की मां ने गूलर के वृक्ष का और सत्यवती ने पीपल के वृक्ष का आलिंगन कर लिया ।

भृगु जी सत्यवती के आश्रम में पहले से ठहरे हुये थे । माँ—बेटी का ऋतुकाल आ गया था उसकी सूचना सत्यवती ने अपने ससुर भृगु ज़ी को दे दी थी । तभी भृगु जी ने दो पात्रों में खीर बनायी थी, एक प्रथम पात्र की खीर को ब्रह्ममय मँत्र से तो दूसरे पात्र की खीर को क्षत्रियमय मँत्र से अभिमंत्रित करके सत्यवती को प्रदान करके उससे कहा था कि हे बेटी , आप दोनो पीपल व गूलर के वृक्षों का आलिंगन मेरी बतायी हुयी विधि के अनुसार करने के पश्चात् प्रथम पात्र की खीर को तुम भक्षण करना जिसके भक्षण करने से तुम्हें ब्राह्मण श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होगी दूसरे पात्र की खीर को अपनी माँता को भक्षण कराना जिसके भक्षण से उसे क्षत्रिय श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति हो जावेगी ।

सत्यवती व उसकी माँ ने सर्वप्रथम तो वृक्षों के आलिंगन में हेरा फेरी कर दी । तत्पश्चात् सत्यवती खीर के दोनों पात्र लेकर अपनी माँ के पास पहुंच गयी और भृगु जी द्वारा खीर भक्षण करने की विधि भी सत्यवती ने अपनी माँता को बता दी तो सत्यवती की माँ ने छल करके उसके हाथों से दोनों खीर के पात्र अपने हाथों में ले लिये और छल करके ब्रह्ममय मँत्रों से अभिमंत्रित खीर को स्वयं भक्षण कर लिया तथा क्षत्रियमय मँत्रों से अभिमंत्रित खीर को अपनी पुत्री सत्यवती को भक्षण करा दिया ।

खीर भक्षण के उपरान्त सत्यवती अपने ससुर भृगु जी को सूचना देने के लिये आयी तो भृगु जी ने अपने दिव्य ज्ञान से जान लिया कि वृक्षों के आलिंगन करने में तथा खीर भक्षण करने में इन दोनों ने हेराफेरी कर ली है । यह सब जानकर भृगु जी अपनी पुत्रवधू सत्यवती से बोले कि हे बेटी, तुम्हारी माँता ने छल करके वृक्षों के आलिंगन में सर्वप्रथम ही हेराफेरी कर दी है तथा छल से तुम्हारी क्षत्रियमय मंत्रों से अभिमंत्रित खीर का भक्षण तुम्हें करा दिया है और उसने स्वयं ब्रह्ममय मँत्रों से अभिमंत्रित खीर का भक्षण कर लिया है । जिसके फलस्वरूप तुम ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हुए भी तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय श्रेष्ठ होगा और तुम्हारी माँ क्षत्रिय श्रेष्ठ होते हुए भी उसको ब्राह्मण श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त होगा । अपने ससुर के वचन सुनकर सत्यवती उनसे बोली कि हे पिताजी मेरा पुत्र क्षत्रिय श्रेष्ठ न होकर मेरा पौत्र क्षत्रिय श्रेष्ठ हो जावे मुझे आप यही वरदान दीजिये । सत्यवती को यही वरदान देकर भृगु जी अपने आश्रम को चले गये । समय आने पर सत्यवती ने क्षत्रिय श्रेष्ठ जमदग्नि को तथा उसकी माँ ने ब्राह्मण श्रेष्ठ विश्वामित्र को जन्म दिया,विश्वामित्र ने कुशावंश में जन्म लिया था । इसी कारण वे कौशिक भी कहे गये ।

जमदग्नि का विवाह राजा प्रजासेंन की पुत्री रैंणुका के साथ हुआ था । कहीं कहीं शास्त्रों में रैंणुका को रैंणु ऋषि की पुत्री भी बताया गया है । जमदग्नि ने रैंणुका से अधुर्य, उदगात होता, ब्रह्मा तथा परशुराम को जन्म दिया । परशुराम सबसे छोटे थे इनमें वासुदेव का अंश था । परशुराम को छोड़कर प्रथम

उदगात होता अधुर्य ब्रह्मा ये चारों के चारों जमदग्नि कुमार यज्ञ के होता होते हैं । हे राम कुशा के वँश में जन्म धारण करने के कारण मुझे कौशिक भी कहते हैं

नोटः देवी भगवते स्कन्ध 4 अध्याय 16 पृष्ठ 44 पर श्लोक 14 को देखो इसमें कल्पभेद से परशुराम जी का जन्म "एकोंनविंश" त्रेतायुगा में हुआ है ।

प्रश्नः– श्री परशुराम जी ने अपने चारों भाइयों व अपनी माँ के सिरों का छेदन क्यों किया था ?

यह पटकथा भागवते स्कंन्ध 9 , अध्याय 16 पृष्ठ 480 से 482 तक देखो इस कथा के अनुवादक श्री राम मूर्ति शास्त्री हैं जो ललित घाट बनारस, डी– 1/16 में निवास करते थे ।

उत्तर : श्री सुखदेव जी बोले कि हे परीक्षत एक बार अपने पिता जमदग्नि की आज्ञा से परशुराम जी ब्रह्म हत्या के निवारण हेतु त्रिलोकी में भ्रमण करने के लिये चले गये थे जो एक वर्ष बाद लौटकर अपने आश्रम में आये थे ।

होनी की बात थी , एक दिन परशुराम की माँ रैंणुका अपने पतिदेव "जमदग्नि" की संध्या व पूजा आदि के लिये घड़ा लेकर गंगा जी से जल लेने के लिये गयी थीं । वहाँ पर रैंणुका ने देखा कि चित्ररथ नामक गन्धर्व कुछ गन्धर्वीयों के साथ गंगा जी में जलक्रीड़ा कर रहा है । स्त्री स्वभाव वश इसी कौतुक को देखते देखते रैंणुका को कुछ विलम्ब हो गया तो विलम्ब से जल का घड़ा वह अपने पति देवता की संध्या आदि को लेकर अपने

आश्रम पर लौटकर आयीं थी। विलम्ब से आने का कारण रैंणुका ने अपने पति देव को भी बता दिया था । परन्तु विलम्ब से आने के कारण जमदग्नि अपनी पत्नी पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये थे,इसी कारण उन्होने अपने सबसे बड़े पुत्र को आज्ञा दी कि तुम अपनी इस दुष्टा माँ का सिर काट डालो परन्तु उनके पुत्र ने कहा कि माँता–पिता सबसे बड़े देवता होते हैं , इस कारण हे पिताश्री मैं अपनी परम पूज्य माँ का सिर कभी नहीं काट सकता हूँ । यह कहकर वह जमदग्नि पुत्र पिता से अलग जाकर खड़े हो गये ।

सुकदेव जी बोले कि हे परीक्षत इसके पश्चात् जमदग्नि ने क्रमशः शेष अपने तीनों पुत्रों को भी आज्ञा दी कि तुम इस दुष्टा अपनी मां का सिर काट डालो परन्तु जो शब्द सबसे बड़े पुत्र ने प्रयोग किये थे वही शब्द कहकर सभी ने अपनी मां का सिर छेदन करने से इन्कार कर दिया और वे तीनों भी अपने बड़े भाई के पीछे जाकर खड़े हो गये ।

दैवगति से उसी समय कहीं से परशुराम जी भी उसी स्थान पर आश्रम में आ गये उन्हें देखकर जमदग्नि ने उनसे भी कहा कि हे मेरे प्रिय पुत्र यह तुम्हारी माँ महापापिनी है क्योंकि आज मैने इससे अपनी सँध्या के लिये गँगा जल मँगाया था परन्तु यह वहाँ गँगा जी में चित्ररथ नामक गँधर्व को कुछ गँधर्वीयों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था उसे देखती रही , इसी कारण यह मेरी सँध्या के लिये गँगा जल बहुत विलम्ब से लेकर आयी है इस कारण मेरी सँध्या का समय भी निकल गया है इसी उद्देश्य से यह तुम्हारी माँ ने वधोचित कार्य किया है । हे पुत्र मैने इन

तुम्हारे चारों बड़े भाइयों को इसका सिर छेदन करने की आज्ञा दी तो ये चारों के चारों मुझसे यह कहकर दूर जाकर खड़े हो गये हैं कि माता पिता प्रथम पूजनीय देवता होते हैं इसी कारण हम अपनी मां का सिर छेदन कभी नहीं करेगें ।

श्री सुकदेव जी बोले कि हे परीक्षत अपने पिता की बातें सुनकर परशुराम जी बोले कि हे देवतातुल्य पिताजी मुझे बताइये कि मैं आपका क्या प्रिय कार्य कर सकता हूँ । परशुराम की बार्ता सुनकर जमदग्नि ने कहा कि हे पुत्र यदि तुम मेरे आज्ञाकारी हो तो सर्वप्रथम मेरी आज्ञा का उल्लँघन करने वाले इन अपने बड़े चारों भाइयों के सिर काट डालो । तत्पश्चात् इस दुष्टा अपनी मां का सिर भी काट डालो अपने पिता की आज्ञा मानकर श्री परशुराम ने अपना अमोघ फरसा उठाया और सर्वप्रथम अपने बड़े चारों भाइयों के सिर काट डाले फिर अपनी परम पूजनीय माँ का भी उसी क्षण सिर काट डाला इस प्रकार श्री परशुराम ने क्षँण भर में अपने चारों भाइयों व माँ सहित पांचों का वध कर डाला ।

सुकदेव जी बोले कि हे परीक्षत परशुराम अपने पिता के योगबल का प्रभाव जानते थे इसी कारण उन्होने माँ सहित चारों भाइयों का वध पिता की आज्ञा से कर दिया था । तत्पश्चात् अब जमदग्नि ने प्रसन्न होकर परशुराम से कहा कि हे पुत्र तुम्हारे इस कार्य से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ अब तुम मुझसे कोई अपना मनोवाँछित वरदान माँग लो पिता की बातें सुनकर परशुराम जी उनसे बोले कि हे पिताजी यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे यह

वरदान दीजिये कि मेरी माँ व चारों भाई अभी इसी क्षँण जिन्दा हो जावें और इनको यह भी ज्ञात नहीं रहे कि मैने इनका वध किया था अन्यथा ये सभी मुझसे अप्रसन्न रहा करेगें । परशुराम जी की बातें सुनकर श्री जमदग्नि ने पाँचों के सिर धड़ से जोड़कर महामृत्युँजय मैंत्र से पाँचों को अतिशीघ्र जिन्दा कर दिया , पिताजी के इस कार्य से श्री परशुराम जी अत्यन्त ही प्रसन्न हुये और परिवार सहित अपने आश्रम में ही निवास करने लगे ।

सहस्रार्जुन द्वारा श्री जमदग्नि की काँमधेंनु का हरण करना और श्री परशुराम जी द्वारा सहस्रार्जुन का बध करना

श्री सुखदेव जी बोले, कि हे परीक्षत सहस्रार्जुन को ही अन्य शास्त्रों में और पुराणों में कार्तिवीर्य अर्जुन भी कहते हैं ये दत्तात्रेय की कृपा से व उनकी तपस्या से हजार भुजा और हजार ही चरण बाला हो गया था । सहस्रार्जुन एक बार मय सेना के शिकार खेलने के लिये सघन बन में चला गया था । शिकार खेलते खेलते इसे शाम हो गयी थी । सभी को प्यास व भूख लग रही थी । दैवात – सहस्रार्जुन जमदग्नि के आश्रम के निकट होकर अपनी सेना सहित गुजर रहा था । तो इसने अपने दो अनुचरों को महामुनि जमदग्नि के आश्रम में भेजा कि महामुनि से पूछकर आओ कि वह हम सबको पानी पिला देगें अन्यथा नहीं। हे परीक्षत , सहस्रार्जुन के दोनों अनुचर मुनि जमदग्नि के आश्रम में पहुंचे और उन्होने उनके पास जाकर कहा कि , हे मुनि जी

महिष्मती नगरी के राजा सहस्राजुन अहेर से लौटकर अपनी नगरी को वापिस सेना सहित जा रहे हैं । सभी को प्यास लगी है क्या आप उन सबको जलपान करा देगें ।

सुखदेव जी बताने लगे कि हे परीक्षत, अनुचरों की बातों को सुनकर जमदग्नि बोले कि हे अनुचरों आप अपने स्वामी से जाकर कह दो कि सेना सहित आप सभी को जलपान के साथ साथ ही भोजन की भी मैं व्यवस्था करूँगा । आप सभी लोग मेरे आश्रम में आ जाइये । जमदग्नि की बातें सुनकर अनुचरों ने सहस्रार्जुन से उपरोक्त सभी बातें जाकर कह दीं तो अतिशीघ्र ही सहस्रार्जुन अपनी सारी सेना लेकर श्री जमदग्नि के आश्रम में पहुंच गये । राजा को सेना सहित अपने आश्रम में आया देखकर जमदग्नि ने उनका आतिथ्य सत्कार किया , और भोजन व जलपान की व्यवस्था कामधेनु के प्रभाव से सारी सेना सहित सहस्रार्जुन की अतिशीघ्र कर दी । अनन्तर सभी की पौंहनाई करके सभी को सन्तुष्ट कर दिया । जमदग्नि की कामधेनु का इतना बड़ा प्रभाव देखकर सहस्रार्जुन के मन में विकार उत्पन्न हो गया तो वह जमदग्नि से कामधेनुं को मांगने लगे । और मुनि से बोले कि हे मुनि जी आप इस गाय का क्या करोगे इसे मुझे दे दीजिये इसके बदले में आप मुझसे मन चाही कीमत ले लीजिये ।

सुकदेव जी वोले कि हे परीक्षत, सहस्रार्जुन की बातें सुनकर, श्री जमदग्नि उनसे बोले कि हे राजन , ये कामधेनु मेरा सर्वस्व है । मैं इसे आपको किसी भी कीमत पर नहीं दे सकता हूँ । मुनि की बातें सुनकर सहस्रार्जुन उनपर कुद्ध हो गये , तथा गाय को

जमदग्नि के आश्रम से जबरन हरण करके ले गये, हे राजन देखो उन जमदग्नि ने सहस्रार्जुन की हर प्रकार से सेवा सुश्रुषा की थी वही राजा उन महामुनि की कामधेनु को हरण करके ले गया है । तुलसीदास जी ने भी ऐसे निम्न कोटि के व्यक्तियों के बारे में कहा है कि –

चौ. जेहिते नीच बढ़ाई पावा ।
सो प्रथमहिं हठि ताहि नसावा ।।

चौ. बायस पालिअ अति अनुरागा ।
होहिं निरामिस कवहुँ कि कागा ।।

चौ. वंश स्वभाव सत्य कवि कहईं ।
फल पीयूस विष वेलिनि लगईं ।।

सुकदेव जी बोले कि हे परीक्षत सहस्रार्जुन जिस समय कामधेनु का हरँण करके ले गये थे । उस समय परशुराम जी कहीं बाहर गये हुये थे । उन्होंने लौटकर आश्रम में अपने माता पिता व भाइयों को शोकाकुल देखकर उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होने परसराम को सहस्रार्जुन द्वारा कामधेंनु के हरण का सारा समाचार बता दिया ।

हे राजन– पिता की बातें सुनकर परशुराम को भारी क्रोध आ गया और वे फरसा लेकर सहस्रार्जुन की राजधानी महिष्मती नगरी को अकेले ही चले गये । वहाँ पहुँचकर उन्होने सर्वप्रथम तो सहस्रार्जुन को मार डाला और कामधेनु को लाकर फिर पिता को सुपुर्द किया ।

श्री जमदग्नि ने परशुराम से पूछा कि हे पुत्र सहस्रार्जुन से, आपने कामधेनु को किस उपाय से प्राप्त किया, तो उन्होंने अपने पिता को उपरोक्त सारा हाल बता दिया परशुराम की वार्ता सुनकर जमदग्नि बोले कि हे पुत्र तुमने सहस्रार्जुन का बध करके अनुचित कार्य किया है तुम्हें ब्रह्म हत्या लग गई है, इसके प्रायश्चित के लिये तुम त्रिलोकी का भ्रमण करो । पिता की आज्ञा मानकर परशुराम जी एक वर्ष के लिये त्रिलोकी का भ्रमण करने के लिए चले गये ।

नोट: सहस्रार्जुन वैसे ब्राह्मण था । परन्तु ययाति के वँश में उत्पन्न होने के कारण वह हयहय वँशी क्षत्रीय कहलाया था । इस कथा को मैं आगे वताऊँगा ।

श्री परशुराम जी ने कौन से क्षत्रियों का 21 बार विनाश किया था –

श्री सुकदेव जी वोले कि हे परीक्षत त्रिलोकी का भ्रमण करके परशुराम एक वर्ष वाद लौट थे । होनीं की बात थी एक दिन परशुराम अपने चारों भाइयों सहित वन में भ्रमण करने के लिये चले गये थे । इसी बीच में पूर्व के वैर को घ्यान में रखकर सहस्रार्जुन के सभी लड़के जमदग्नि के आश्रम में प्रवेश कर गए। और अपने पिता के वैर को समझ करके, ध्यानावस्था में समाघिष्ठ बैठे हुए जमदग्नि का सिर मौका पाकर काटकर ले गए और अपनी राजधानी महिष्मती नगरी में ले जाकर वरी के पेड़ पर टांग दिया ।

अपने पति देवता को मृतक अवस्था में देखकर परशुराम की

माँ रैंणुका छाती पीट–पीट कर रोने लगी । उसी समय भाइयों सहित परशुराम भी आश्रम में आ गए । अपनी मां का करूण क्रन्दन व सहस्त्रार्जुन के लडकों द्वारा अपने पिता का वध जानकर स्वयं भी मूर्च्छित हो गये । मूर्छा से जागते ही इनकी मां ने इन्ही के सामने इक्कीस बार अपनी छाती पीटी थी । तभी परशुराम ने "हयहय वँशी " क्षत्रियों को 21 वार पृथ्वी से नष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी ।

श्री सुकदेव जी बोले कि – हे परीक्षित श्री परशुराम ने फरसा हाथ में लेकर हयहय वँशीयों की राजधानी महिष्मती नगरी पर चढ़ाई कर दी और महल में निवास करने वाले सभी हयहय वँशीयों को मार डाला और वहाँ से अपने पिता का सिर लाकर उनके घड़ पर जोड़ दिया । और भगवान के यजन एवं संजीविनी विद्या के प्रभाव से उन्हें पुनः जिन्दा कर लिया । आगामी मन मन्तर में परशुराम भी सप्ररित्रियों में एक ऋषी होगें ।

हे राजन अन्त में परशुराम ने अपने फरसे से हयहय वँशी क्षत्रियों को 21 बार नाश करके 9 कुण्ड रक्त के कुरूक्षेत्र में भर दिये थे । परशुराम द्वारा हयहय वंशी क्षत्रियों से पृथ्वी को विहीन कर दिया था । इसी कारण आजकल भी हयहय वंशी क्षत्रीय पृथ्वी पर कहीं नजर नहीं आते हैं ।

उपरोक्त सभी कार्यो से निवृत होकर, परशुराम जी ने कुरूक्षेत्र में एक विष्णु यज्ञ भी किया था । और ब्राह्मणों को बहुत सा दान भी दिया था । इसी यज्ञ में कश्यप जी ने परशुराम

से आकर भिक्षा में सम्पूर्ण पृथ्वी दान में मांग ली थी । परशुराम जी ने उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी दान में दे दी थी । तभी से पृथ्वी "कश्यपी" कही जाने लगी थी । अन्त में श्री परशुराम जी, समुद्र से निकले हुए कौंकण देश में महेन्द्राचल पर्वत पर जप तप करने चले गये थे । वह आज भी वहीं पर तपस्या कर रहे हैं हयहय वंशी क्षत्रियों के अतिरिक्त परशुराम जी ने अन्य किसी जाति के क्षत्रियों का नाश नहीं किया था । इसी कथा को मैं आपके पठन पाठन के लिए विस्तार से पृष्ठ 89 से आरम्भ करूंगा ।

हयहय वंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति की कथा विस्तार से

यह कथा देवी भगवत के स्कन्ध छः के अध्याय 17 से प्रारम्भ होकर अध्याय 23 तक समाप्त होती है ।

जन्मेजय के पूछने पर व्यास जी बोले कि हे – राजन एक बार "रैवन्त" नामक सूर्य पुत्र भगवान विष्णु के दर्शनों को उच्चैश्रवा अश्व पर सवार होकर बैकुण्ठ को गए थे उस समय लक्ष्मी जी श्री हरि के पास बैठीं थीं । परन्तु लक्ष्मी जी समुद्र जात अश्व को जो सातमुख वाला बहुत सुन्दर था । उसको एक टक हो देखने लगी । श्री हरि लक्ष्मी जी की इस चेष्ठा से कुपित हुए और उनसे बोले कि हे लक्ष्मी जी तुम इस उच्चैश्रवा को देखकर उस पर इतनी मोहित हुई हो कि मेरे पूछने पर भी मुझसे बात नहीं कर रही हो इसी कारण मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि– तुम सर्वत्र रमण करती हो इसी से तुम "रमा" नाम से और तुम्हारा

मन अत्यन्त चँचल है, इसी से संसार में ''चँचला'' नाम से विख्यात होगी तथा प्राकृत स्त्रियों की भांति, भी चँचल होगी। कहीं भी स्थिर नहीं रहोगी क्योंकि तुम मेरे समीप रहते हुए उच्चैश्रवा अश्व को देखकर उसी पर मोहित हुई हो, इसी कारण तुम मृत्यु लोक में जाकर अस्वी होकर जन्म ग्रहण करोगी।

श्री हरि का शाप सुनकर रमा अत्यन्त दुखित होकर श्री हरि से बोली कि हे प्राँण बल्लभ मैं आपके द्वारा शापित हुई हूँ इसी कारण मैं अभी अपने प्राण त्याग करती हूँ और मैं कभी अन्य जन्म ग्रँहण नहीं करूंगी। परन्तु हे स्वामी, मुझे यह वताइये कि आपने जो शाप मुझे दिया है उसका ''विमोचन'' कब होगा।

कमला देवी की बात सुनकर श्री हरि बोले कि हे प्रिये, जब मृत्यु लोक में मेरे ही समान तुमको पुत्र प्राप्त हो जांदेगा तभी तुम मेरे शाप से मुक्त होकर फिर मेरी निकटता को प्राप्त करोगी।

प्रश्नः— व्यास जी से जन्मेजय ने पूछा कि, हे गुरू जी अस्वी होकर माँता लक्ष्मी कहाँ रहीं और कितने दिन रहीं, और उनको विना हरि के पुत्र कैसे प्राप्त हुआ और सूर्य पुत्र रैवन्त का फिर क्या हुआ ? फिर माँता जी को भगवान श्री हरि कब मिले ?

उत्तर : व्यास जी बोले कि हे राजन, श्री वासुदेव द्वारा कमला देवी को शापं देते देखकर सूर्य पुत्र ''रैवन्त'' ने भयातुर होकर श्री हरि को प्रणाम करके अपने पिता के पास जाकर उन्हें बताया कि हे पिता श्री, श्री हरि ने अपनी प्राणवल्लभा कमला को मृत्यु लोक में अस्वी होने का शाप दे दिया है और कहा है कि मृत्यु लोक में तुम मेरे समान पुत्र उत्पन्न करने के पश्चात् फिर मेरी निकटता

को प्राप्त करोगी ।

हे राजन इधर "कमला" अपने पति द्वारा शापित होकर नारायन से आज्ञा लेकर मृत्यु लोक में घोड़ी होकर उस स्थान पर पहँच गई, जहाँ पर सूर्य पत्नी – संज्ञा अपने पिता दक्ष के शाप से अश्वी होकर तपस्या में रत रही थी । यह स्थान सुवर्णाच्छ पर्वत के उत्तर में कालिन्दी व तमसा के सँगम में था । उसी स्थान पर रहकर कमला देवी ने अस्वी होकर शिवजी का सौ वर्ष तप किया था । कमला देवी के तप से प्रसन्न होकर धर्मरूपी बैल पर सवार होकर शिव जी उन्हें वरदान देने के लिए उनके पास पहुँच गये और बोले कि हे हरिप्रिये "कल्यानी" सुनो ।

तुम सारे जगत की माँता हो और तुम्हारे पति सम्पूर्ण जगत के विधाता हैं , तुम उनके रहते हुए मेरी स्तुति क्यों करती हो ? यह काँरण मुझे बताइये ? हे कल्यानी वेद में कहा है कि पति ही स्त्री का गुरू व देवता होता है । पति की सेवा करना ही पत्नी का सनातनी धर्म है , पति साधू हो या असाधु हो, मँगल की इच्छा रखने वाली स्त्रियाँ अपने पति की ही सेवा करती हैं । हे कमले, तुम्हारे पति वासुदेव , सभी के सेवनीय व सम्पूर्ण अर्थ दान करने में समर्थ हैं, तुम उन गोलोक पति को त्यागकर मेरी आराधना क्यों करती हो ? सदा शिव की बातें सुनकर, कमला शिव से बोली कि – हे देवाधि देव आप भक्तों पर शीघ्र प्रसन्न होते हैं ऐसा मैं जानती हूँ । मेरे स्वामी ने मुझे शाप दिया है – हे करूणा निधि , मुझे इस शाप से उद्धरित कीजिये हे दया निधि मैने अपने प्राँणोश्वर प्रभु से इस शाप निवृत्ति के लिये

पूछा था, तो उन्होने बताया था कि जब तुम मेरे समान या तुल्य पराक्रमशाली एक पुत्र मृत्यु लोक में उत्पन्न कर लोगी, तभी मेरे शाप से मुक्त होकर तुम्हारा बैकुन्ठ में मेरे पास ही फिर से वास होगा । हे देवाधि देव, मैं अपने पति देव से शापित होकर मैं यहां पर शाप से मुक्त होने के लिये आपका तप करती हूँ । आप ही बतावें, मैं पति देव के बिना पुत्र कैसे प्राप्त कर सकती हूँ । क्योंकि श्री वासुदेव तो वैकुन्ठ में निवास करते हैं और आप समस्त लोकों का मंगल करते हैं । आप मेरे ऊपर प्रसँन्न होकर मुझे शाप मुक्ति के लिये वरदान दीजिये ।

व्यासजी बोले कि जन्मेजय, कमला शिव जी से फिर कहने लगी कि हे देवाधि देव मैं जानती हूँ कि आप में और श्री हरि जी में कोई अन्तर नहीं है । यह बात भी मैने अपने पति देवता से ही जानी है । 'हे हरिआप हैं सो वे हैं और वह हैं सोई आप हैं । हे मँगल मय मैं आप दोनो को अभेद भाव जानकर आपका ध्यान करती हूँ । इसमें मुझे कोई दोष नहीं है । अश्वी रूपी कमला की बातें सुनकर शिवजी बोले कि हे कल्यानी तुमने मेरा और उन वासुदेव का एक भाव कैसे जाना , सो मुझे समझाइये ।

हे जन्मेजय शिव जी की बातें सुनकर कमला देवी श्री हरि से कहने लगीं कि एक बार श्री हरिः निर्जन वन में ध्यान परायण थे उस समय मैं उनके समीप ही थी । तब मैने उनसे पूछा कि हे स्वामी आप तो सर्वेस्वर हैं, फिर आप किसका ध्यान करते हैं तब उन्होंने मुझसे कहा था कि , हे प्रिये मैं शिव जी का ध्यान करता हूँ और कभी कभी शिव जी मेरा ध्यान करते हैं। शँकर जी को प्राणों से भी अधिक मैं प्रिय हूँ इसी प्रकार शिव जी भी

मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं अतः मुझमें और शिवजी में कोई अन्तर नहीं है । हे शंकर जी मेरे पूछने पर ऐसा उन्होने मुझसे कहा था । हे जगत पिता अब आप मेरा वही उपाय कीजिये, जिससे मुझे मेरे प्रिय का मिलन शीघ्र हो ।

श्री लक्ष्मी जी की बातें सुनकर, शिव जी बोले कि हे कमले मैं तुम्हारी तपस्या व वार्ता से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, एक बार श्री हरि अश्व रूप होकर, तुम्हारी कामना को पूर्ण करने के लिये तुम्हारे पास शीघ्र ही अवश्य आवेगें और कामातुर होकर तुमसे समागम भी करेगें, जिसके फल स्वरूप तुमको "एकवीर" नामक एक पुत्र उत्पन्न होगा । फिर तुम उन्हीं के साथ विमान में बैठकर बैकुण्ठ धाम को पूर्व रूप लेकर चली जाओगी ।

इस कार्य की सिद्धि के लिये हे कल्याणी तुम महामाया श्री जगदीशवरी का अब तप करो, तुम महामाया का तप करना भूल गयी थीं, इसी कारण तुम्हारा मन उस उच्चैश्रवा में आकर्षित हो गया था । इसी कारण आपको यह सभी कष्ट प्राप्त हुआ है । श्री लक्ष्मी जी को यही सब वरदान देकर शिवाशिव अपने लोक को चले गये, और कमला अब अम्बिका देवी का तप करने में संलग्न हुई ।

श्री हरि के पास सन्देश भेजकर, उन्हें श्री कमला देवी के पास अश्व रूप होकर रहने की शिव जी द्वारा, आज्ञा प्रदान करना ।

श्री व्यास जी बोले कि हे जन्मेजय , कैलाश पहुंच कर शिव जी ने श्री नारायण के पास अपना चित्र रूप नामक एक गण बैकुन्ठ को भेज दिया । उसने जाकर श्री नारायण से कहा कि मुझे गिरजा पति ने आपके पास भेजा है और आपको यह सँदेश भेजा है कि हे पुन्डरीकाक्ष आप सँसार की शक्ति हैं , परन्तु अब आप शक्ति के बिना इस समय शक्तिहीन हैं । अब अतिशीघ्र आदि शक्ति कमला देवी को समझाकर अपनी गोद में बिठाइये क्योंकि इस संसार में रमा के बिना कोई भी क्षण मात्र ठहर नहीं सकता है । इसलिय आप शीघ्र अश्वी रूप कमला देवी के पास जाकर अश्व रूप धारण करके पहुँचकर उनसे समय आने पर समागम कीजिये, और अपने शाप के कारण उनसे ही एक पुत्र उत्पन्न करके उन्हें अपने धाम को ले आइये ।

हे जन्मेजय शिव जी के दूत की बांतें सुनकर श्री हरिः बोले कि हे चित्ररूप आप श्री शिव जी से जाकर कह देना कि जो संदेश आपने मेरे लिये भेजा है, वह मुझे स्वीकार है । श्री विष्णु जी की सभी बातें सुनकर चित्र रूप शीघ्र ही कैलाश को रवाना हो गये ।और श्री नारायण की सारी कथा श्री शिव जी को जाकर बता दी कि हे प्रभु आपकी सभी बातें मुझे स्वीकार हैं, आपके द्वारा भेजा गया पूर्ण सँदेश मुझे स्वीकार है ।

व्यास जी बोले कि हे जन्मेजय इधर तो कैलाश पहुँचकर चित्र रूप ने श्री नारायण का सारा सँदेश श्री शिव जी को कह सुनाया इधर श्री वासुदेव अश्व रूप धारण करके तमसा व कालिन्द्री के सँगम पर बैठी हूई अपनी प्राँणवल्लभा को देखकर

अति प्रसन्न हुये । इसी प्रकार अश्वी रूप कमला भी अपने प्राणेश्वर को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुयी । अब अश्वी रूप कमला के साथ अश्व रूप श्री नारायण आमोद प्रमोद के साथ रहने लगे । कुछ समय के पश्चात् अश्वी रूप कमला का मासिक धर्म का समय आया ऋतुकाल के आगमन के पश्चात् , अश्व रूप श्री विष्णु भगवान व अश्वी रूप श्री कमला देवी का मधुर मिलन हुआ । जिसके फलस्वरूप अश्वी रूपी कमला ने शुभ समय में गर्भधारण किया और दसवें माह में उन्होंने एक पुत्र रत्न को जंन्म दिया । पुत्र का जन्म होते ही अश्वी रूपी कमला और अश्व रूपी श्री विष्णु जी अपने अपने पूर्ववत स्वरूपों में परिवर्तित हो गये ।

हे राजन, श्री हरि ने अपना विमान तत्क्षण मंगाया तभी दारूक उनका सारथी विमान लेकर तमसा व कालिन्द्री के सँगम पर उनके पास आ गया । उसी समय कमला का हाथ पकड़ कर श्री हरि ने उन्हें विमान में बैठा लिया । विमान में बैठकर श्री कमला देवी बोलीं कि हे प्राँणनाथ इस नवजात वच्चे को छोड़कर मैं कैसे आपके साथ चल सकती हूँ इस नवजात बच्चे को भी अपने साथ लेकर अपने लोक को गमन करना चाहती हूँ ।

हे राजन, कमला देवी की बातें सुनकर श्री विष्णु जी ने उनसे कहा कि हे प्राण प्रिये मैंनें इस नवजात शिशु की रक्षा का पूर्ण रूप से प्रबन्ध कर दिया है । इस नवजात शिशु से एक बहुत बड़ा कार्य सिद्ध होगा । क्षत्रिय श्रेष्ठ ययाती का पुत्र तुर्वसु नाम का है ययाति ने अपने इस पुत्र का दूसरा नाम हरिवर्मा रख

दिया है हरिवर्मा एक पुण्य तीर्थ में सौ वर्ष से पुत्र की प्राप्ति के लिये मेरा तप कर रहा है ।

व्यास जी बोले कि , हे जन्मेजय श्री विष्णु जी फिर अपनी प्राणप्रिया से कहने लगे कि, यह पुत्र मैने उसी के लिये उत्पन्न किया है तुम मेरे साथ प्रथम तो बैकुण्ठ को चलो तत्पश्चात् मैं और तुम् इसी विमान में बैठकर तीर्थ में हरिवर्मा के पास चलेगें और उसे इसी स्थान पर भेज देगें जहाँ यह हमारा नवजात शिशु विद्यमान हैं । हरिवर्मा इस पुत्र को प्राप्त करके अपनी तपस्या का पूर्ण फल प्राप्त करेगा । यह हमारा पुत्र क्षत्रिय श्रेष्ठ हरिवर्मा द्वारा पालित होने के कारण क्षत्रियश्रेष्ठ ही कहलायेगा । वैसे यह मेरे वंश में पैदा होने के कारण ब्राह्मण श्रेष्ठ है ।

चम्पक नामक विद्याधर की कथा

व्यास जी बोले कि हे जन्मेमय श्री विष्णु भगवान व श्री कमला देवी के वैकुण्ठ चले जाने के पश्चात् , तमसा व कालिन्द्री के संगम पर चम्पक नामक विद्याधर अपनी पत्नी मदनालसा के साथ विमान में बैठकर उसी नवजात शिशु के निकट क्रीडा करते करते आ गया । वह बालक अपने सीधे पैर का अगूँठा मुँह में लगाकर खेल रहा था उस खेलते हुए बच्चे को चम्पक ने अपनी गोदी में उठा लिया और अपनी प्रिय पत्नी मदनालसा की गोद में दे दिया ।

हे राजन मदनालसा उस बच्चे को प्राप्त करके अति प्रसन्न हुयी और अपने पति चम्पक से पूछने लगी , कि ये बालक

किसका है । चम्पक ने कहा कि हे प्रिये हम सर्व प्रथम इस बच्चे को लेकर स्वर्ग को इन्द्र के पास चलते हैं । उनसे ही इस बालक के बारे में पूछेगें कि यह किसका है । कौन इसे यहाँ छोड़कर चला गया है । सम्पूर्ण जानकारी करके ही हम इस बालक का जाति सँस्कार करेंगें । आपस में इस बात का निश्चय करके चम्पक नामक विद्याधर अपनी प्रिय पत्नी मदनालसा को साथ लेकर विमान में बैठकर स्वर्ग को इन्द्र के पास चला गया ।

व्यास जी कहने लगे कि हे जन्मेजय ! स्वर्ग पहुँचकर चम्पक ने, अपने राजा इन्द्र से कहा कि हे राजन यह नवजात शिशु हम को, कालिन्द्री व तमसा के सँगम पर सुवर्णाच्छ पर्वत के उत्तरी भाग के वाग में खेलता हुआ प्राप्त हुआ है । यदि आपकी आज्ञा हो तो हम इसे ग्रहँण कर लें ।

हे राजन, चम्पक की कहानी सुनकर इन्द्र बोले कि हे, विद्याधर , श्री हरि ने अश्व रूप होकर अपनी प्रिय पत्नी अश्वी रूपी कमला देवी से उत्पन्न किया है । इस शिशु का नाम "हयहय" है । क्षत्रीय श्रेष्ठ ययाति नन्दन "तुर्वसु" को इस शत्रु नाशक पुत्र को प्रदान करके , श्री हरि भली भाँति एक आश्चर्य युक्त कार्य सम्पन्न करेंगे। हें चम्पक तुम्हें यह शिशु जिस स्थान से प्राप्त हुआ है । उसी स्थान पर शीघ्र छोड़ कर आइये । यह, "तुर्वसु" को विना प्रयास ही प्राप्त होगा । इसी कारण यह "कृत्रिम" पुत्र नाम से विख्यात होगा । भगवान इन्द्र की बात सुनकर चम्पक अपनी पत्नी सहित विमान में बैठकर शीघ्र तमसा व कालिन्द्री के संगम पर गए और उसे वहीं पर रखकर शीघ्र ही

स्वर्ग चले गए ।

श्री कमला देवी से उत्पन्न इस पुत्र का नाम हयहय क्यों पड़ा ?

व्यास जी बोले कि जन्मेजय, यह बालक अश्वी रूपी कमला से श्री हरि ने अश्व रूप होकर उत्पन्न किया था इसी कारण इस नवजात शिशु का नाम हयहय रखा गया था । बाद में वही बालक एकवीर नाम से सँसार में विख्यात हुआ था ।

हे राजन स्वर्ग में पहुँच कर हरि व कमला ने कुछ देर विश्राम किया फिर विमान में बैठकर ययाति नन्दन हरिवर्मा तुर्वसु के समीप तीर्थ में पहुँच गए । जहाँ वह श्री विष्णु जी का पुत्र की प्राप्ति के लिये तप कर रहे थे । तुर्वसु के पास पहुँच कर श्री हरि ने उससे मन'वाँछित वर माँगने को कहा तो हरिवर्मा ने अपने नेत्र खोल कर देखा कि उन्हें अपने सामने श्री हरि को कमला सहित खड़े हुए देखा । उन्हें देखकर हरिवर्मा ने, दोनो को साष्टाँग प्रणाम किया । और उनसे बोले कि हे प्रभू ! में बहुत समय से पुत्र प्राप्ति की इच्छा से आपका ही तप कर रहा था । अब आप मुझे अपने समान ही पुत्र प्राप्त होने का वरदान दीजिये । तुर्वसु की बातें सुनकर श्री हरि उससे बोले कि, हे ययाति नन्दन ! तुम अब अति शीघ्र, कालिन्द्री व तमसा नदी के सँगम पर सुवर्णाच्छ पर्वत के उत्तरी भाग के बाग में पहुचों मैं तुम्हारे लिए एक बालक अपने अँशाश से उत्पँन्न करके रख आया हूँ । उसे जाकर तुम प्राप्त करो, उस बालक ने मेरे उर से व कमला देवी के उदर से

जन्म लिया है ।

हे जन्मेजय तुर्वसु को यह वरदान देकर श्री हरि व कमला देवी विमान में बैठकर दोनों बैकुण्ठ को चले गये । श्री हरि की वाणी को सत्य जानकर तप समाप्त करके तुर्वसु एक वेगवान रथ लेकर , तमसा व कालिन्द्री के सँगम पर पहुँच गये । वहीं सुवर्णाच्छ पर्वत के उत्तरी भाग वाले बाग में , श्री हरि के तेज स्वरूप, उस बालक को देखकर अति प्रसँन्न हुये । वह बालक अपने पैर का अगूँठा मुँह में लगाकर खेल रहा था ।

व्यास जी बोले कि हे जन्मेजय श्री हरिः के अंश से पैद्रा हुआ वह बालक साक्षात् कामदेव के समान सुन्दर था । तुर्वसु ने रथ से उतर कर उस बालक को उठाकर गोद में लिया और रथ में बैठ कर अपनी राजधानी में प्रवेश करके अपने राजमहल में पहुच गया । राजमहल में पहुँचकर तुर्वसु ने उस बालक को अपनी महारानी ''मनोरमा'' की गोद में दे दिया । उस नवजात शिशु को प्राप्त करके मनोरमा ने अपने पति -देवता से पूछा कि हे प्राणनाथ यह कामदेव के समान सुन्दर बालक आपको कहाँ से प्राप्त हुआ है ?

हे राजन अपनी पत्नी की बात सुनकर तुर्वसु ने बताया कि हे प्रिये '' मनोरमा'' सुनो, यह बालक श्री हरि के उर से व कमला के उदर से उत्पन्न हुआ है । मैने श्री हरि का तीर्थ में सौ वर्ष तप किया था उसी मेरे तप से प्रसन्न होकर श्री हरि ने मुझे यह नवजात बालक प्रदान किया है । प्रँसन्न होकर तुर्वसु ने इस बालक का नाम ''एकवीर'' रखा पहले इस बालक का नाम श्री

हरि ने (हयहय) रखा था ।

व्यास जी बोले कि हे जन्मेतय तुर्वसु ने इस अपने कृत्रित पुत्र का जात संस्कार कराया और ग्यारहवें वर्ष में जनेऊ संस्कार भी करा दिया । अन्ततोगत्वा वेदाध्ययन व धनुर्विद्या का अध्ययन करा कर गुरू से गुरू दीक्षा दिलाई फिर गुरू को गुरू दक्षिणा, देकर तुर्वसु अपने कार्य से निवृत हो गए । और अपने पुत्र एकवीर का राज तिलक करके उसे राज सिंहासन पर बिठा दिया फिर अपने पुत्र को सम्पूर्ण राज्य देकर राजा तुर्वसु स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा से अपनी महारानी "मनोरमा" को साथ लेकर तपोवन को चले गये । और मैनाक पर्वत पर जाकर श्रीहरि के तप में राजा रानी सँलग्न हो गए । और अन्त में दोनो को स्वर्ग की सुखद प्राप्ति हुयी ।

हयहय(एकवीर) से यशोवती की वार्ता और एकावली की उत्पत्ति

व्यास जी बोले कि हे जन्मेजय एक दिन एक वीर अपने मँत्रीगणों के साथ व उनके पुत्रों के साथ गँगा तट पर शिकार खेलते खेलते पहुँच गया वहाँ एक वीर ने गँगा जी में सौ पँखुड़ी वाले एक कमल के फूल को भी देखा । इसी कमल के फूल के दक्षिणी पार्श्व भाग में एक मनोहर कमल लोचना कन्या निर्जन वन में कुर्री पक्षी की भाँति खड़ी खड़ी रो रही थी ।

हे राजन एकवीर ने उस रोती हुई कन्या को देखकर उससे उसके रोने का कारण पूछा कि , हे वाले तुम इस निर्जन वन में

गँगा जी में खड़ी हुई , अकेली क्यों रो रही हो । मेरे राज्य में कोई भी दुखी नहीं रहता है मुझे वताओ कि तुम्हारे माँता पिता कौन है, और तुम कहां की रहने वाली हो ।

व्यास जी बोले कि हे राजन, एकवीर की बातें सुनकर वह कन्या एक वीर को अपना वृतान्त सुनाने लगी कि हे राजन, एक अन्य राज्य में जो आपके राज्य से प्रथक है उसमें रम्य नामक एक राजा राज्य करते हैं। उनकी साध्वी भार्या का नाम रूकमरेखा है । वे निसन्तान थे । इसी कारण , एक दिन रूक्मरेखा अपने पति देवता "रम्य" से बोली कि हे राजन अपने कुल पुरोहित से पूछकर एक पुत्रेष्ठि यज्ञ कीजिये ।

हे राजन अपनी भार्या की बात मानकर रम्य ने पुरोहित से पूछकर यज्ञाचार्यो को बुलाया , और शुभ घड़ी में पुत्रेष्ठि यज्ञ का शुभारम्भ कर दिया । यह यज्ञ सात दिन विधि पूर्वक चलती रही सातवें दिन यज्ञ की अँतिम आहुति देते ही हवन कुण्ड से एक सुन्दर कन्या प्रकट हो गयी । यज्ञ के होता ने उस कन्या को अपने दोनों हाथों में ले लिया और उसका नाम यज्ञ के होता ने ही एकावली रखकर राजा रम्य की गोद में दे दिया । राजा ने भी अपनी प्रिय भार्या रूकमरेखा को सुर्पुद कर दिया । यज्ञ समाप्त हो गयी । हे राजन , उन्ही राजा रम्य के मँत्री की मैं पुत्री हूँ मेरा नाम यशोवती है । राजा रम्य की वही पुत्री एकावली इस स्थान पर गँगा जी में कमलों वाले स्थान पर जलक्रीड़ा करने के लिये बहुत से शस्त्रधारियों के पहरे में आया करती थी । और कुछ देर तक जलक्रीडा करके उन्ही शस्त्रधारियों के पहरे की

सुरक्षा में सखियों सहित अपने राजभवन को लौट जाती थीं।

कालकेतु द्वारा एकावली का हरण करना

व्यास जी वोले कि हे राजन, राजा रभ्य ने अपनी पुत्री एकावली की जलक्रीडा करने हेतु अपने राजमहल में ही एक बड़ा तालाब भी बनवाया था और उसमें बहुत से कमल भी लगवाये थे लेकिन एकावली गँगा जी में यहीं पर अधिकतर जलक्रीडा करने आया करती थी ।

हे राजन, यशोवती राजा एकवीर से कहने लगी कि एक दिन एकावली अपनी सखियों को साथ लेकर वहुत से शस्त्रधारियों के पहरे में इसी स्थान पर गँगा जी में कमल के फूलों को अपने हाथों में ले लेकर जलक्रीड़ा कर रही थी, मैं भी उसी के साथ ही जलक्रीड़ा कर रही थी, कि अचानक , कहीं से वहुत से राक्षसों को साथ लेकर कालकेतु नामक राक्षस ने आकर राजा रभ्य की पुत्री एकावली को अपनी पत्नी बनाने की इच्छा से उसे वलात् पकड़ लिया और उसे अपने साथ रथ में बैठाकर ले जाने लगा तभी एकावली के रक्षकों ने, उस कालकेतु के चंगुल से एकावली को छुड़ाने के लिये उस कालकेतु से भारी संग्राम किया , परन्तु एकावली के रक्षक उसे कालकेतु के चंगुल से मुक्त कराने में असफल रहे ।

यशोवती एकवीर से आगे पुनः कहने लगी कि हे राजन एकावली के सभी रक्षक कालकेतु से युद्ध में हार मानकर वह सभी एकावली की सखियों को लेकर राजा रभ्य के पास पहुंच

गये , और उन्होंने राजा रम्य को कालकेतु के द्वारा "एकावली" के हँरण की सारी दुखद कथा कह सुनायी । यह दुखद समाचार सुनकर एकावली के माता पिता को अत्यधिक कष्ट हुआ ।

व्यास जी बोले कि हे जन्मेजय अब एकावली को जबरन अपनी पत्नी बनाने की कामना से अपने रथ में बलात् डालकर वह कालकेतु चल दिया , तब मैं यशोवती उसके रथ के पीछे पीछे रोती हुई चलने लगी । एकावली के ज्यादा रूदन करने पर रथ के पीछे पीछे चलती हुई मुझे देखकर, कालकेतु ने अपना रथ रोककर मुझे भी एकावली के पास रथ में बैठा लिया। रथ में मुझे भी बैठाकर कालकेतु मुझसे कहने लगा कि हे यशोवती तुम अपनी इस सखी एकावली को समझाओ कि मैं इसे पटरानी बनाकर अपने दुर्ग में रखूँगा । हे राजन मैने कालकेतु से ऐसा करने से मना किया तो उसने स्वयँ ही एकावली को अपनी पत्नी बनाने को बाध्य करने लगा ।

तो एकावली कालकेतु से कहने लगी कि मेरे पिता ने मेरा विवाह राजा हयहय के साथ करना निश्चय किया है इसी कारण अब मैं दूसरे पति का वरण नहीं कर सकती हूँ । इतनी वार्ता के पश्चात् कालकेतु रथ लेकर अपनी राजधानी में जा पहुंचा और हम दोनो को अपने राजभवन में ले गया वहां पर ले जाकर उसने हम दोनों को बलात् भोगा है ।

यशोवती बोली कि हे राजन मैने वचपन में एक ब्राह्मण से देवी का बीज मंत्र सीखकर उसे सिद्ध कर लिया था तो अचानक मैने देवी के बीज मँत्र को एक दिन ध्यानपूर्वक रात्रि में जपना

शुरू कर दिया तो उसी दिन की रात्रि में महादेवी ने मुझे स्वप्न दिया कि हे यशोवती तुम इसी मेरे बीज मंत्र को अपनी सखी एकावली को भी सिखा दो इससे हे यशोवती तुम दोनो का कल्याण होगा । देवी द्वारा स्वप्न में मुझे ज्ञान कराने के पश्चात्, मैने अपनी प्रिय सखी एकावली को भी महादेवी के बीज मँत्र का जप करना बता दिया . तो हम दोनो मिलकर देवी के बीज मंत्र का ध्यान करने लगीं ।

यशोवती बोली कि हे राजन एकवीर हम दोनो के जप करने से देवी हम दोनों पर प्रसन्न हुई और एक दिन स्वप्न में उन्होने मुझसे कहा कि हे यशोवती तुम शीघ्र उठो , और उसी स्थान पर पहुँचों जहाँ से तुम दोनों का इस दुष्ट कालकेतु ने हरँण किया था, अब तुम्हें मेरे बीज मँत्र के जप व ध्यान से सर्वत्र गमन करने कीं शक्ति प्राप्त हो गयी है । वहीं पर तुंमको एकवीर (हयहय) से भैंट हो जावेगी । उन एकवीर को भी दत्तात्रेय ने महादेवी के बीज मँत्र का ज्ञान कराया है वही एकवीर इस एकावली का वरण करेगें और तू सखी रूप में एकावली के साथ जावेगी हे हयहय तब मैं देवी के बीज मँत्र का सहारा लेकर कालकेतु की राजधानी पाताल पुरी से चलकर यहाँ आयी हूँ एकावली कालकेतु के दुर्ग में ही सुरक्षित रह गयी है । हे राजन अब आप अपना परिचय दीजिये कि आप कौन है ? आपका व आपके गांव का क्या नाम है और आपके माँता पिता कौन है ?

कालकेतु का वध और कार्ति वीर्य अर्जुन की जन्मकथा

व्यास जी बोले कि हे जन्मेजय , सुनिये फिर मंत्री की पुत्री यशोवती के पूछने पर एकवीर यशोवती से बोले कि हे वाले मैं सिन्धुसुता कमला का पुत्र हयहय हूँ और एकवीर नाम से इस महान सँसार में विख्यात हूँ । हयहय बोले कि हे यशोवती तुम मुझे अपनी प्रिय सखी एकावली के समीपं अभी लेकर चलो मैं उस दुष्ट कालकेतु के दुर्ग का रास्ता व उसका पता नहीं जानता हूँ । उसके दुर्ग में पहुँचकर उस कालकेतु को मैं सेना सहित मार डालूँगा और एकावली को उसकी कैद से छुड़ाकर उसके माँता पिता को सौंप दूँगा तत्पश्चात् उससे अपना विवाह सम्पन्न करूँगा एकवीर की बातें सुनकर राजा रभ्य के मंत्री की पुत्री अत्यन्त प्रसन्न हुई ।

यशोवती फिर एकवीर को समझाने लगी कि हे महाराज कुमार , सर्वप्रथम आप अपने गुरू दत्तात्रेय के पास जाकर उनसे बीज मँच को फिर से सीखकर उसे और अत्यधिक सिद्ध करो तभी आप में अपनी वृहद सेना सहित कालकेतु के दुर्ग में प्रवेश करने की शक्ति उन्ही महादेवी की कृपा से आपको प्राप्त हो जावेगी ।

यशोवती की बातें सुनकर राजकुमार एकवीर शीघ्र ही अपने गुरू दत्तात्रेय के पास जा पहुँचे और उनसे त्रिलोकी तिलक अम्बिका का बीज मँत्र ग्रहँण करके उसे अतिशीघ्र ही सिद्ध कर

लिया इस मंत्र के सिद्ध होते ही एकवीर को सर्वत्र जाने की शक्ति प्राप्त हो गयी ।

व्यास जी बोले कि हे जन्मेजय महादेवी की कृपा से अब एकवीर को सर्वत्र जाने की शक्ति प्राप्त होते ही उन्होंने एक विशाल सेना को लेकर यशोवती के साथ , पाताल में पहुँचकर कालकेतु का दुर्ग चारों ओर से घेर लिया । उस समय कालकेतु एकावली को समझा रहा था कि अब तुम मुझे पति रूप में वरण कर लो ।

हे राजन इसी बीच में दूतों ने आकर कालकेतु से कहा कि हे राक्षस राज एकावली की सखी यशोवती एक राजा के साथ विशाल सेना लेकर पातालपुरी में आ गयी है और उसने आपका दुर्ग (किला चारों) ओर से घेर लिया है या तो आप उससे संग्राम करो या इस काल की निशानी एकावली को उसे सुपुर्द करके सुखूपर्वक अपना राज्य करो ।

दूतों की बातें सुनकर, कालकेतु एकावली से पूछने लगा कि हे प्रिये तुम्हारे पिता सेना लेकर आयें हो तो मुझे बताओ मैं उनको अपने राजमहल में बुलाकर धन रत्न आदि देकर उन्हें प्रसन्न कर लूँगा और मैं तुम्हारे साथ अपना विवाह विधि पूर्वक कर लूँगा । यदि तुम्हारे पिता के अतिरिक्त , अन्य कोई सेना लेकर आया होगा तो उससे युद्ध करके मैं उसे सेना सहित रणक्षेत्र में धराशायी कर दूँगा ।

व्यास जी वोले कि हे जन्मेजय, कालकेतु की बातें सुनकर

एकावली उससे कहने लगी कि मेरा पिता है या भाई है या अन्य कोई सेना लेकर इस पातालपुरी में आया है , मैं इस बारे में कुछ नहीं जानती हूँ एकावली इतनी वार्ता राक्षस कालकेतु से कर रही थी कि इसी बीच में अन्य दूतों ने भी आकर फिर कहा कि हे राक्षस राज आपका दुर्ग एकवीर (हयहय) ने भारी सेना लेकर घेर लिया है । यह एकवीर श्रीविष्णु जी के अँश से सिन्धुसुता कमला से उत्पन्न है । जन्मेजय को व्यास जी आगे कथा सुनाने लगे कि हे राजन दूत की इस बात को सुनकर , एक विशाल सेना लेकर , कालकेतु सँग्राम स्थल में पहुँच गया , और कालकेतु तथा एकवीर की सेना में घमासान सँग्राम होने लगा जिसके फलस्वरूप एकवीर की सेना ने कालकेतु की समस्त सैंना को अल्प समय में ही मार डाला तथा भारी गदा लेकर एकवीर ने कालकेतु पर ऐसा प्रहार किया कि कालकेतु एक ही गदा के प्रहार से मर गया । कालकेतु के मरते ही उसकी शेष सेना भी प्राण बचाकर यत्र–तत्र भाग गयी ।

व्यास जी वोले कि हे जन्मेजय कालकेतु व उसकी सेना के धराशायी होने के उपरान्त , राजा रभ्य के मँत्री की पुत्री यशोवती कालकेतु के भवन को गयी , और वहाँ से एकावली को पालकी में बैठाकर छावनी में लाकर एकवीर को सुर्पुद किया ।

हे राजन तत्क्षँण एकवीर ने सेना सहित एकावली व उसकी सखी यशोवती को एक रथ में बैठाकर महाराजा रभ्य के नगर को प्रस्थान कर दिया । कुछ ही समय में एकवीर की सारी सेना दल बल के साथ , एकावली के पिता की राजधानी में पहुंच

गयी । वहां पहुंच कर एकवीर ने यशोवती सहित एकावली को उसके पिता के महल में पहुँचा दिया । अपनी पुत्री के आने से सारे राजमहल में खुशियां धूमधाम से मनाई गयीं ।

एकावली के विवाह की पूर्ण कथा

व्यास जी वोले कि हे जन्मेजय , फिर समय पाकर एकावली ने अपने माँता पिता को आरम्भ से अन्त तक की आप वीती सारी कहानी सुना डाली । समय आने पर यशोवती ने भी हयहय एकवीर की सारी कथा व जीवन परिचय तक की एकावली के पिता को सुना दी । उसे सुनकर महाराजा रभ्य अत्यन्त प्रसँन्न हुये । फिर समुचित समय देखकर एकावली का विवाह शुभ घड़ी व मुर्हुत में धूमधाम से एकवीर (हयहय) के साथ महाराजा रभ्य ने विधिवत कर दिया ।

व्यास जी,जन्मेजय को फिर आगे कथा सुनाने लगे कि महाराजा रभ्य ने अपनी पुत्री एकावली के विवाह में बहुत सा दान भी दिया और मँत्री की पुत्री यशोवती को भी दासी के रूप में दान कर दिया । विवाहोपरान्त एकवीर कुछ समय तक तो अपनी ससुराल में निवास करते रहे फिर अपने सास ससुर से विदा होकर धूमधाम के साथ अपनी राजधानी लौटकर आ गये ।

हे राजन, हयहय (एकवीर) अपनी प्रिय पत्नी एकावली के साथ कामसुख राजमहल में रहकर भोगने लगे जिसके फलस्वरूप शुभ मुर्हुत व घड़ी में एकावली ने गर्भ धाँरण किया और दसवें माह में एकवीर ने एकावली से प्रथम पुत्र कृतवीर नामक पुत्र

उत्पन्न किया । इन्ही कृतवीर का पुत्र कार्ति वीर्य अर्जुन नाम से त्रिलोकी में विख्यात हुआ है । इसी कार्ति वीर्य अर्जुन ने युवा वस्था में दत्तात्रेय भगवान को ही गुरू बनाया और उन्ही की असीम कृपा से कार्ति वीर्य ने सहस्र भुजायें प्राप्त की थीं । जन्म के समय पर इसकी दो ही भुजायें थीं इसकी राजधानी महिष्मती नगरी में थी । इसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं । व्यास जी जन्मेजय को फिर कथा सुनाने लगे कि हे राजन जो तुमने मुझसे पूछा था वह सभी वृतान्त मैने तुम्हें विस्तार से बता दिया यही सहस्रावाहु एकवीर (हयहय) का पौत्र था इसी कारण सहस्रावाहु हयहय वंशी क्षत्रिय कहलाये गये । इन्ही हयहय वंशी क्षत्रियों का 21 बार सारे संसार से श्री परशुराम भगवान ने सँहार किया था, किन्ही अन्य गोत्र या वँश के क्षत्रियों का सँहार उन्होने कभी नहीं किया था । यदि वो समस्त क्षत्रियों का सँहार करते तो आप समझिये रघुवँश की उत्पत्ति आदिकाल से है तो उनका उन्होने कभी भी सँहार क्यों नहीं किया था ।

हे राजन अश्व रूप श्री हरि व अश्वी रूपी कमला से हयहय एकवीर की उत्पत्ति हुई थी इसी कारण इनका आगे चलने वाला वंश भी हयहय वँशी क्षत्रियों के नाम से इस सारे सँसार में विख्यात हुआ और श्री हरि व कमला देवी से उत्पन्न होने के कारण इनके वँशज महान शक्तिशाली थे ।

प्रश्न :— श्री गणेश जी के दो दाँत थे तो उनका एक दांत कहाँ चला गया ।

उत्तर :— श्री नारौंयण नें श्री नारद जी को बताया कि हे नारद जी, भृगु वंशी परशुराम के गुरू श्री शिव जी हैं । एक बार श्री परशुराम , अपने गुरू के दर्शनों को कैलाशपुरी गये थे । जब श्री परशुराम जी अपनी मौंनसी गति से अति शीघ्र कैलाशपुरी पहुँचे तो, हे नारद जी उस समय महल के दरवाजे पर श्री गणेश जी पहरा दे रहे थे । गणेश जी के निकट पहुँचकर श्री परशुराम जी बोले कि ,हे गणेश जी, मुझे महल में अँदर जाने दीजिये आज मैं बडे उत्कन्ठा से अपने गुरू शिव जी के दर्शन करने को कैलाशपुरी आया हूँ ।

श्री परशुराम जी की वार्ता सुनकर श्री गणेश जी उनसे बोले कि , हे भृगुकुल भूषँण, इस समय जगदम्बा सहित जगत पिता शयन कर रहे हैं इस कारण मैं तुम्हें महल के अंदर नहीं जाने दूँगा । बार बार कहने पर भी श्री गणेश जी ने श्री परशुराम जी को महल के अँदर नहीं जाने दिया , तो गणेश जी पर श्री परशुराम जी अत्यन्त कुद्ध हो गये ।

श्री नारायण बोले कि हे नारद जी , होंनी बड़ी बलवती होती है, इसी कारण श्री परशुराम जी और श्री गणेश जी में परस्पर भीषण द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हो गया । जो त्रिलोकी को भय प्रदान करने वाला था । इन दोंनो महाशक्तियों के युद्ध को सभी देवता स्वर्ग में खडे —खडे देख रहे थे , और सोच रहे थे कि अब अवश्य ही महाप्रलय हो जावेगा ।

हे नारद जी मौंका पाकर परशुराम जी ने क्रुद्ध होकर अपने फरसे से , श्री गणेश जी पर ऐसा तीक्ष्ण प्रहार किया कि , इस

प्रहार से श्री गणेश जी का एक दाँत कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा , दाँत के कटते ही श्रीगणेश जी ने करूण क्रँदन करके , अपनी माता शिवा को पुकारा और बेहोश होकर महल के दरवाजे पर ही गिर पड़े ।

श्री गणेश जी का करूण क्रँदन सुनकर जगदम्बा जी अपने महल के दरवाजे पर आ गयीं , उन्होंने अपने पुत्र श्री गणेश जी को वेहोशी की अवस्था में देखकर उन्हें भारी क्रोध उत्पन्न हो गया और श्री परशुराम जी से सँग्राम करने के लिये , माँता शिवा ने अपनी सहायता के लिये आवाहन करके नौ देवियों सहित भैरव आदि गणों को भी महल के दरवाजे पर ही प्रकट कर लिया, और शिवा ने उन सभी शक्तियों को आज्ञा प्रदान की कि हे शक्तियों अति शीघ्र ही इस सारे सँसार को नष्ट कर डालो अन्त में इस दुष्ट परशुराम को भी मार डालो ।

श्री नारायण बोले कि हे नारद जी माँता शिवा के इस प्रकार शब्द सुनकर त्रिलोकी काँप उठी और ब्रह्मा , विष्णु का सिंहासन थरथर हिलने लगा । तत्क्षण परशुराम जी ने जाना कि अब महाप्रलय होना चाहती है तो उन्होने सभी अस्त्र शस्त्र पृथ्वी पर डालकर दातों तले तिनका दबाकर, जगदम्बा शिवा की शरण हुये और स्तोत्रों से उनकी अनेकानेक प्रकार से वन्दना करने लगे , और बोले कि हे मातेश्वरी मुझे इस दुष्कर्म के लिये क्षमा कीजिये । मैं आपकी शरण हूँ त्राहिमाम त्राहिमाम , हे नारद श्री परशुराम जी की अनेकानेक प्रकार से विनती सुनकर जगदम्बिका उनपर प्रसन्न हो गयीं । तभी उन्होने श्री परशुराम जी को

अभयदान प्रदान कर दिया , और उन्होंने जो सारी शक्तियाँ जो सँसार को नष्ट करने के लिये प्रकट की थीं । उन सभी को शिवा ने अपने शरीर में ही विलीन कर लिया । इधर श्री शिवजी की कृपा से श्री गणेश जी की भी मूर्छा जाग गयी ।

हे नारद जी फिर माँ शिवा श्री गणेश सहित, श्री परशुराम को अपने साथ अपने महल में ले गयीं वहाँ पहुँचकर श्री परशुराम जी ने अपने गुरू शिव जी का दर्शन करके उनका चरणोदक लिया । अन्त में शिवा शिव से आज्ञा प्राप्त करके वह महेन्द्राचल पर तप करने के लिये चले गये तदुपरान्त जगद्माँता ने श्री गणेश जी के एक दाँत के कटने की सारी कथा जगद्पिता शिव जी को आरम्भ से अन्त तक सुना दी । इस कथा को सुनकर श्री शिव जी बोले कि हे प्रिये होंनी बड़ी प्रबल होती है । आज यह मेरा पुत्र गंणेश एक दँत होकर सारे सँसार में पूजित होगा ।

श्री नारायण बोले कि हे नारद जी परशुराम द्वारा फरसे से श्री गणेश जी का एक दाँत काटने के कारण हीं वह त्रिलोकी में एक दँत होकर प्रसिद्ध हुये थे । जो आपने मुझसे पूछा था वह सब वृतान्त मैने तुम्हें आदि से अँत तक बता दिया है ।

नोटः यह पटकथा वर्ष 1998 के लीलांक नामक कल्याण से प्राप्त की गयी है जो गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हुआ है तथा ब्रह्म वैवर्त्त पुराण के गणपति खण्ड के अध्याय 42, 43 में भी उपरोक्त कथा मिलती है ।

प्रश्न :श्री परशुराम जी को फरसा कहाँ से प्राप्त हुआ था जिससे 21 बार हयहय वँशी क्षत्रियों का सँहार किया था ।

उत्तर :— श्री नारद जी के पूछने पर श्री नारायण ने उन्हें बताया कि हे नारद जी जब परशुराम जी के पिता का वध कार्तिवीर्य अर्जुन ने कर दिया था तो उन्हें जीवन दान देकर श्री परशुराम जी महामृत्युजयं शिवजी के पास कैलाश धाम गये थे । वहां जाकर उनको गुरू वनाया था । श्री परशुराम ने शिवजी से थोडे समय में ही सभी विद्याओं को सीख लिया था । तदुपरान्त श्री परशुराम जी ने अपने गुरू शिवजी को गुरू दक्षिणा प्रदान की और अपने आश्रम को लौटने लगे तो शिव जी ने परशुराम को कुछ समय के लिये अपने आश्रम में और रोक लिया । श्री नारायण बोले कि, हे नारद जी शिव जी ने अपने आश्रम में श्री परशुराम जी को रोककर उनसे कहा कि हे भृगुनन्दन आप मेरे समीप कुछ दिन और ठहरिये मैं आपको अमोघ अस्त्र–शस्त्र एवं विद्याओं को तुम्हें और प्रदान करूँगा, जिन्हें प्राप्त करके आप त्रिलोकी पर विजय प्राप्त कर सकोगे ।

शिव जी की बातें सुनकर श्री परशुराम जी अपने गुरू शिव जी के पास उनकी आज्ञानुसार रूक गये । तदुपरान्त जगदपिता शिव जी ने उन्हें अपना पुत्र मानकर बताया कि हे पुत्र मैं तुम्हें ऐसा गुहय मँत्र प्रदान करूँगा और ऐसा एक अद्भुत कवच भी प्रदान करूँगा जिसे प्राप्त करके तुम मेरी कृपा से कार्तिवीर्य अर्जुन का वध सहज़ में ही कर डालोगे और 21 बार में सभी हयहय बँशी क्षत्रियों से सारी पृथ्वी को विहीन कर डालोगे ।

श्री नारायण बोले कि हे नारद जी इतना कहकर शिव जी ने परशुराम को परम दुर्लभ मँत्र तथा " त्रैलोक्यविजय" नामक अद्‌भुत कवच प्रदान किया और उसी समय उन्हें सम्पूर्ण वेद वेदाँग को भी पढ़ा दिया । तत्पश्चात् शिव जी ने परशुराम को नागपाश, पाशुपतास्त्र ब्रह्मास्त्र आग्नेस्त्र, नारायणस्त्र ,वायव्यास्त्र, वारूणास्त्र , गन्धर्वास्त्र, गरूणास्त्र, जृम्भणास्त्र, गदा, शक्ति , परसु (फरसा), त्रिशूल तथा अन्य शस्त्रास्त्रों के सँहार और सन्धान, अच्छय धनुष आत्मरक्षा के उपाय संग्राम में विजय पाने की युक्तियाँ और अनेक प्रकार के माया युद्ध तथा संसार को मोहित करने वाली , मृत्यु और बुढ़ापे का हरण करने वाली विद्यायें भी उन्हें शिव जी ने अल्प समय मे सिखा दी । श्री परशुराम ने गुरूकुल में चिरकाल तक रहकर सारी विद्याओं को सीखा और फिर तीर्थ में जाकर मँत्र सिद्धि भी प्राप्त की । इसके पश्चात् अपने गुरू और गुरूआनी शिवा शिव को प्रणाम करके श्री परशुराम जी अपने आश्रम को लौट आये ।

श्री नारायण बोले कि हे नारद जी श्री परशुराम जी , फरसा आदि अस्त्र शस्त्र कवच आदि तथा अनन्य विद्यायें अपने गुरू शिवजी से प्राप्त करके अपने आश्रम को लौट करके आ गये थे । इसी फरसे व विद्याओं के प्रभाव से परशुराम जी ने हयहय वंशी क्षत्रियों का इस सारे सँसार से 21 बार में नाश कर दिया था । हे नारद जी जो तुमने मुझसे पूछा था वह वृतान्त आदि से अंत तक मैने तुम्हें बता दिया है ।

नोट : उपरोक्त कथा को संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त पुरॉण के गणपति खण्ड के अध्याय 30 को देखिये ।

श्री परसराम जी के आश्रम में पृथ्वी मॉंता बृद्ध रूप होकर व शेष जी का बालक रूप होकर निवास करने की कथा ।

प्रारम्भ :— राम चरित मानस बालकान्ड के पृष्ठ संख्या 318 से 320 तक का अवलोकन करें। (श्री ज्वाला प्रसाद की टीका से)

काकभुशुन्डि जी श्री गरूण जी को कथा सुनाने लगे कि हे गरूण जी जनकपुरी में धनुषयज्ञ में जाकर श्री राम चन्द्र जी ने शिव जी के धनुष को रँग भूमि में खड़े होकर तोड़ डाला था, तो इस धनुष के टूटने की आवाज महेन्द्राचल पर्वत पर श्री परशुराम जी ने सुनी थी । बडे वेग के साथ वहाँ से जनकपुर के लिये रवाना हो गये थे और योगवल से अतिशीघ्र जनकपुरी की रँगभूमि में पहुँच गये थे । वहां जाकर उन्होने देखा कि रँगभूमि में शिव जी का धनुष टूटा पड़ा है । उसे टूटा हुआ देखकर श्री परशुराम जी जनक जी से पूछने लगे

चौ.1— अतिरिस बोलेउ वचन कठोरा ।
कहु जड़ जनक धनुष किन तोरा ।।3।।
वेगि दिखाउ मूढ़ नतु आजू ।
उलटौं महिं जहँ लगि तव राजू ।।4।।

अर्थ :— हे गरूण जी बडे क्रोध से कठोर वचन बोले कि बता

मूर्ख जनक यह धनुष किसने तोड़ा है । उनको दिखा रे मूर्ख नहीं तो आज जहाँ तक तेरा राज्य है वहाँ तक की इस पृथ्वी को उलट दूंगा ।

चौ.— अति डर उतर देत नृप नाहीं ।
कुटिल भूप हरषे मनमाहीं ।। 5 ।।
सुर मुनि नाग नगर नर नारी ।
सोचहिं सकल त्रास उरं भारी ।। 6 ।।

अर्थ :— अति डर से जनक जी उत्तर नहीं देते है और खोटे राजा मन में प्रसन्न होने लगे कि अब इनका अनिष्ट होगा । देवता मुनि नाग नगर के नर नारी सब सोचने लगे, मन में बड़ा ही दुख है।

चौ. :— मन पछितातिं सीय — महतारी ।
विधि सँवारी सब बात बिगारी ।। 7 ।।
भृगुपतिकर स्वभाव सुनु सीता ।
अर्द्ध निमेष कल्पसमय बीता ।। 8 ।।

अर्थ :— सीता की माँता मन में पछताने लगी कि विधाता ने सब बात सँवार कर बिगाड़ दी । जानकी जी को परशुराम का स्वभाव सुन कर आधा पल एक कल्प के समान बीता ।

दोहा — सभय विलोके लोक सब, जानि जानकी भीर
हृदय न हर्ष विषाद कछु , बोले श्री रघुवीर ।।

अर्थ :— अब सब लोगों को भयभीत देख और जानकी जी को

मन में डरी हुई जान कर श्री राम चन्द्र जी परशुराम जी से बोले कि जिनके मन में हर्ष विषाद कुछ नहीं है ।।314।।

चौ. :– नाथ शम्भु–धनु–भँजनहारा ।
होइहि कोइ एक दास तुम्हारा ।।1।।

आयसु काह कहिय किन मोही ।
सुनि रिसाय बोले मुनि कोही ।।2।।

अर्थ :– श्री रामचन्द्र जी बोले कि हे नाथ शिव जी का धनुष तोड़ने वाला कोई एक आपका दास ही होगा । क्या आज्ञा है । मुझसे कहते क्यों नहीं ? यह सुनकर क्रोधी मुनि क्रोध करके बोले ।। 2।।

चौ.:– सेवक सोइ जो करै सेवकाई ।
अरि करनी करि करिय लराई ।।3।।

सुनहु राम जेहि शिव धनु तोरा ।
सहसबाहुसम सो रिपु मोरा ।।4।।

अर्थ :– श्री परशुराम जी बोले । ओ राम सेवक तो वही है जो सेवकाई करे और शत्रु की करनी करे सो वह शत्रु की ही करनी हुई ।।3।। जिस किसी ने शिव का धनुष तोड़ा है । वह मेरा सहस्त्रबाहु के समान शत्रु है ।।4।।

चौ .– सो विलगाय विहाय समाजा ।
नतु मारे जैहैं सब राजा ।।5।।

सुनि मुनि वचन लखन मुसुकाने ।

बोले परशुधरहि अपमाने ।।6।।

अर्थ :– हे जनक उसको समाज से अलग खड़ा कर दो अन्यथा यहां पर बैठे हुए सभी राजा मारे जावेगें ।। 5।। यह परशुराम जी का वचन सुनकर लक्ष्मण जी हँस पड़े और परशुराम का निरादर करते हुए बोले ।। 6।।

चौ.– बहुधनुहीं तोरेउँ लरिकाई ।
कवहुँ न असि रिस कीन्ह गुसाई ।।

यहि धनु पर ममता केई हेतु ।
सुनि रिसाइ कह भृगकुल केतु ।।

अर्थ :– हे महाराज , लडकपन में , मैने बहुत से धनुष तोड डाले परन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया था । ।। 6।।

प्रश्न :– यहाँ पर लक्ष्मन जी परशुराम जी से, ऐसा क्यों कहते हैं कि मैने, लड़क पन में बहुत से धनुष तोड़ डाले थे ।

उत्तर :– काकभुशुन्डि जी गरूण जी से बोले कि हे पक्षिराज, सतयुग में परशुराम जी ने सभी अधर्मी राजाओं और हयहय वंशी क्षत्रियों को जीत जीत कर उनके सारे धनुष अपने आश्रम पर लाकर एकत्रित कर लिये थे और अनेक देवताओं के धनुष भी अपने आश्रम में ही सँग्रह करके रख लिये थे । उनके बोझ से सारी पृथ्वी वृहद और शेष जी व्याकुल होने लगे थे । उसी समय पृथ्वी स्त्री का और शेष जी बालक का रूप धारण कर परशुराम जी के पास यह विचार कर पहुचें थे कि यह सारे धनुष यदि राक्षसों के हाथ लग गये तो महाअनर्थ हो जायेगा । उनके

आश्रम में पहुँचकर पृथ्वी माँता परशुराम जी से बोली कि , हे महाराज यह मेरा बालक और मैं बड़ी दुखी हूँ । कभी कभी भिक्षा मांगने पर भी भरपेट भोजन नहीं मिलता है । इस कारण मैं आपके आश्रम में इस बालक को साथ लेकर आयी हूँ कि मैं आपके आश्रम की परिचर्या किया करूँगी ।

हे मुनि जी इस बालक को लेकर में अन्य ऋषियों के आश्रमों में भी परिचर्या करने गयी थी । परन्तु उन ऋषियों ने मुझको इस कारण नहीं रखा कि मेरा छोटा पुत्र बडा चँचल है । हर समय बिगाड़ करता रहता है । अब मैं आपके आश्रम में भूखी प्यासी आपकी परिचर्या करने के लिये आयी हूँ । यदि आप मेरे इस बालक के बिगाड़ पर क्रोधित न हुआ करें तो मैं आपके आश्रम में आपकी परिचर्या करने हेतु रूक जाऊँ ।

बृद्ध पृथ्वी माँता की बातें सुनकर परशुराम जी बोले कि तुम मेरे आश्रम में बनी रहो मैं इस बालक के द्वारा किये गये सभी अपराधों को क्षमा करता रहूँगा। यंह सुनकर शेष जी और पृथ्वी माता परशुराम के आश्रम में उनकी परिचर्या करने के लिये रूक गये । एक दिन परशुराम जी किसी कार्य से कहीं बाहर गये हुये थे तो मौका पाकर कालरूपी शेष जी ने उनके आश्रम में रखे हुए उन सभी धनुषों को तोड़ डाला । जिनको उन्होने अधर्मी राजाओं और हयहय वँशी क्षत्रियों को मारकर व देवताओं को जीतकर अपने आश्रम में एकत्रित किये थे उन धनुषों के तोड़े जाने के शब्द को सुनकर परशुराम जी विस्मित होकर अपने आश्रम में आ गये तो उन्होने शेष जी द्वारा धनुषों को टूटे हुए

देखकर भी उन पर कोई क्रोध नहीं किया और उनसे कहा कि अब तुम दोनो मेरे आश्रम से चले जाओ उसी समय शेष जी ने अपना विराट रूप परशुराम जी को दिखाया और कहा कि हे परशुराम जी मैने शिव जी के धनुष को छोडकर अन्य सभी धनुषों को तोड़ डाला है । इसको त्रेता के चौथे चरण में जनकपुरी में जाकर श्री रामचन्द्र जी ही तोड़ेगें । तब आपसे फिर मेरी व्रार्ता होगी । यह सुन कर शेष जी और पृथ्वी माँता को परशुराम जी ने आर्शीवाद दिया इतनी कथा दोनो परशुराम जी को सुनाकर शेष जी और पृथ्वी माता अपने अपने रूपों में विलीन हो गये । और अपने अपने लोकों को चले गये ।

सो शेष रूप लक्ष्मण जी परशुराम जी से कहते हैं कि मैने पूर्व में बालक रूप धाँरण करके आपके आश्रम में जाकर सारे धनुष तोड डाले थे तब आपने मेरे ऊपर बिल्कुल क्रोध नहीं किया था । इसी धनुष के ऊपर आपकी ऐसी प्रीति क्यों है । ऐसे लक्ष्मण जी के शब्द सुनकर परशुराम जी उन पर क्रोधित हुये थे । काकभुशान्डि जी ने कहा कि हे गरूड़ जी जो आपने पूछा था वह सभी वृतान्त मैने तुम्हें बता दिया है ।

नोटः– ब्रह्म वैवर्त पुराण के गणपति खण्ड में भी इस उपरोक्त कथा को देखिये ।

श्री ज्वाला प्रसाद की टीका से वालकाण्ड पृष्ठ 329 पर अग्रिम कथा को अवलोकन करें ।

चौ.– राम रमापतिकर धनुलेहू । खैंचहु मिटहि मोर सन्देहू।।7।।

देत चादर आपुहि चढ़ि गयऊ । परशुराम मन विस्मय मयऊ ।।8।।

प्रश्नः— यह धनुष परशुराम जी को, कहाँ से प्राप्त था । जिसे परशुराम जी ने श्री राम को प्रत्यँक्षा चढ़ाने के लिये दिया था ।

उत्तर :—काकभुसुन्डि बोले कि हे गरूड़ जी सतयुग में श्री परसराम ने विष्णु अँश से सात कला से अवतारित होकर हयहय वँशी क्षत्रियों व अधर्मी राजाओं और राक्षस आदि का संहार किया था ।

एक समय परशुराम जी ने , विष्णु जी का तप किया था । उस तप से प्रसन्न होकर श्री हरि, परशुराम जी के निकट आए । वहां आकर श्री हरि ने परसराम जी से कहा कि हे भृगुकुल नन्दन ,तप से उठो तुम्हारा तप पूर्ण हो गया है मुझसे मन वाँछित वर माँगों ।

हे गरूड़ जी जैसे ही , परसराम जी ने अपनी आँखें खोलीं तो उन्होंने देखा कि मेरे सम्मुख श्री हरि खड़े हैं । उन्हें देखकर परशुराम जी ने उन्हें साष्टाँग प्रणाम किया । श्री हरि ने उठाकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया तो परशुराम जी ने उनसे वर माँगा कि हे प्रभु आपके चरणों में मेरी प्रीति बनी रहे त्रिलोकी में विजयी होकर निवास करूँ । अपनी शक्ति से ही सदैव शक्तिवान रहूँ ।श्री हरि से उन्होने जो माँगा था, वह सब उन्हें प्रदान कर दिया । अन्त में जाते समय श्री हरि ने अपने कन्धे से उतार कर एक धनुष तथा एक बाँण उन्हें प्रदान करके उनसे कहा कि हे

भृगुकुल भूषण, तुम इसे हर समय अपने कन्धे पर धारण किये रहँना , और इस वाँण को अपने तरकस में रखना । मेरी तुम्हारी वार्ता त्रेता के चौथे चरण में होगी । तब वार्ता से समझकर आप इसी मेरे धनुंष वाँण को, मेरे हाथ में दे देना , यदि इस धनुष पर मैं प्रत्यंचा चढ़ा दूँ तो मेरा पूर्ण अवतार समझ कर आप महेन्द्राचल पर तप करने चले जाना ।

काकभुसुन्डि जी बोले कि हे गरूड़ जी जब सीता स्वयंवर में जनकपुरी में विश्वामित्र के साथ जाकर , श्री राम ने शिव जी के ध्नुष को तोड़ डाला था तब वहाँ आकर परशुराम जी ने जनक जी को धमकाया था । जैसा कि हम इससे पहले की कथा में बता चुके हैं , फिर शेष रूपी लक्ष्मण जी से भी कठोर वार्ता उन्होने की है तब श्री राम ने अन्त में उनसे क्षमा याचना करते हुए उनको ज्ञान कराया था कि –

चौ.– हमहिं तुमहिं सरवरिकसि नाथा । कहहु तौ कहाँ चरण कहूँ माँथा ।। 5 ।।

चौ.– राम मात्र लघु नाम हमारा । परशु सहित बड़नाम तुम्हारा ।। 6 ।।

अर्थ :– श्री राम बोले हे महाराज , हममें और तुममें कैसी समता । हम तो आपके चरणों में सिर रखने वाले हैं ।। 5 ।। और राम मात्र मेरा छोटा सा नाम है और परशु के साथ आपका बड़ा नाम है । (परशु सहित यह शब्द कहकर श्री राम ने अपना सारा ईश्वरीय अँश परशुराम के शरीर से अपने में खींच लिया ।

हे गरूँण जी परशुराम जी अपने को शक्तिहीन अनुभव करने लगे । तभी उन्हें अपने तप के समय, जो वार्ता श्री हरि व स्वयँ से हुई थी उसका ज्ञान उन्हें हो गया कि तप के समय श्री हरि ने मुझे धनुष देकर कहा था कि त्रेता के चौथे चरण में मेरी तुम्हारी वार्ता होगी उसी समय इस धनुष को मेरे हाथ में दे देना यदि इस धनुष पर मैं प्रयन्चा चढ़ा दूँ तो समझ लेना कि मेरा अवतार हो गया है और तुम्हारा ईश्वरीय अँश मेरे अँश में लय हो जावेगा । और फिर तुम अँशहीन होकर महेन्द्राचल पर जप तप करने चले जाना । सो श्री हरि का अवतार होना समझ कर श्री परशुरामने अपने कन्धे से धनुष बाँण उतार कर उनके हाथ में देकर कहा था कि ।

चौ. :– राम रमापति कर धनुलेहू । खैंचहु मिटाहि मोर सन्देहू ।। 7।।

देत चाप भपुहि चढ़ि गयऊ । परशुराम मन विस्मय भरू ।।8।।

काहि जय जय रघुकुल केतु । भृगुपाती गयऊ बनाई तप हेतु ।।

हे राम लक्ष्मी पति अपने हाथ में यह धनुष वाँण लीजिये इस पर आप प्रयन्धा चढा देगें तो मैं समझ लूँगा कि आपका पूर्ण अवतार हो गया है । परशुराम से धनुष लेते ही वह स्वयं ही चढ़ गया था, तभी परशुराम को आश्चर्य हो गया और समझा कि अवतार हो गया है । उसी क्षँण रघुकुल केतु श्री राम की जय

जय कार करते हुए श्री परशुराम जी महेन्द्राचल पर तप करने चले गये थे । हे गरूण जी आपने जो पूछा था सो वह सभी वृतान्त मैने तुम्हें बता दिया है

नोटः इसी कथा को बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में धनुष यज्ञ के प्रसंग का पठन पाठन करें ।

प्रश्न :श्री परशुराम जी के पिता श्री जमदग्नि के मरणोपरान्त उनकी माँता जी ने श्री परशुराम जी को देखकर 21 बार अपने वक्षस्थल पर हाथ क्यों मारे थे ?

नोट:यह कक्षा सँक्षिप्त व्रह्मम वैवर्त्त पुराणाँक के गणपति खँण्ड के पृष्ठ संख्या 285 से 288 तक का अवलोकन करें ।

उत्तर:—श्री नारायण बोले कि हे नारद जी, जब श्री परसराम जी, सीता स्वयंवर के अवसर पर, श्री मिथलेश की मिथिलापुरी में पहुँचे तो उन्होने वहां जाकर देखा कि शिव जी के धनुष के दो टुकड़े धनुष यज्ञ में टूटे पड़े हुये हैं । शिव जी के धनुष को टूटा हुआ देख कर , परशुराम जी को भारी क्रोध आया और श्री जनक जी से कहने लगे कि रे मूर्ख बता इस मेरे गुरू शिव जी के धनुष को किसने तोड़ा है । यदि तू शीघ्र नहीं बतावेगा तो तेरा जहाँ तक राज्य है वहां तक की सारी पृथ्वी को उलट दूँगा ।

हे नारद जी, महाराजा जनक जी से वार्ता हो ही रही थी कि बीच में ही श्री लक्ष्मण जी ने श्री परशुराम जी से वार्ता प्रारम्भ कर दी और आपस में अत्यन्त गर्मागर्म वातावरण बन गया, तभी श्री राम चन्द्र जी ने बीच में ही श्री परशुराम जी से विनयावनत होकर कहा कि हे आर्य यह मेरा छोटा भाई है इसका नाम लक्ष्मण है, अभी ये अबोध है । आप पितातुल्य हैं, इसे क्षमा कीजिये । आपके गुरू जी का धनुष तो मैने तोड़ा है इस धनुष को मेरे द्वारा तोड़े जाने के कारण मैं ही इस धनुष तोड़ने का अपराधी हूँ । विविध भांति समझाने के पश्चात् परशुराम जी का

क्रोध कुछ शान्त हो गया, तभी श्री राम चन्द्र जी उनसे कहने लगे कि –

चौ. राम मात्र लघु नाम हमारा ।
परशु सहित बड़ नाम तुम्हारा ।।
हमहिं तुमहिं सर वरि कसि नाथा ।
कहउ तो कहाँ चरण कहुँ माथा ।।

अर्थ :– हे भृगु नन्दन छोटा सा मेरा नाम राम है और फरसा सहित आपका नाम मुझसे बहुत बड़ा है । मेरी और आपकी समता कैसे हो सकती है आपके जहां चरण पड़ेगें वहां मैं माथा टेकने वाला आपका छुद्र सेवक हूँ ।

श्री राम चन्द्र जी ने परसु सहित कहकर श्री परशुराम जी की सारी शक्ति अपने में खींच ली तभी परशुराम जी को पूर्व का ज्ञान हो आया कि जब मैने श्री विष्णु जी का तप किया था तब उन्होने मेरे पास आकर मेरे तप से प्रसन्न होकर मुझे एक वैष्णव धनुष मेरे हाथ में देकर मुझसे कहा था कि हे आर्य इसे आप अपने कन्धे में डाले रहना त्रेता के चौथे चरण में फिर हमारी और तुम्हारी वार्ता मिथलापुरी में होगी । तभी आप वार्ता से समझ लेना कि मेरा अवतार हो गया है । उसी क्षॅण तुम तपस्या करने के लिये महिन्द्राचल पर्वत पर ले जाना, फिर भी परीक्षा के लिये मैं इस वैष्णव धनुष को इनके हाथों में यह कहकर अर्पण करूं और उनसे कहूँ कि हे श्री राम यदि आप इस धनुष पर प्रत्यन्चा चढ़ा देगें तो मैं समझ लूँगा कि आपका अवतार हो गया

है । हे नारद, यही अपने मन में विचार करके श्री राम चन्द्र जी के हाथों में श्री परशुराम जी ने अपने दायें कन्धे से उतार कर वही वैष्णव धनुष दे दिया और कहा कि हे श्री राम यदि आप इस मेरे वैष्णव धनुष पर प्रत्यन्चा चढ़ा देगें तो मैं समझूंगा कि आपका अवतार हो गया है । यह वार्ता सुनकर श्री राम चन्द्र जी ने श्री परशुराम के हाथों से अपने हाथों में उनका धनुष ग्रँहण कर लिया और उसपर अनायास ही प्रत्यन्चा चढ़ा दी । तभी परशुराम जी श्री रामचन्द्र जी की जय जय कार करते हुए महेन्द्राचल पर तप करने के लिये चले गये ।

श्री नारायण कहने लगे कि हे नारद हयहय वंशी कार्तिवीर्य अर्जुन अपनी एक महती सेना लेकर एक बार अहेर के लिये चल पड़ा । वनों, उपवनों ,पहाड़ों में भ्रमण करते करते दोपहर दिन व्यतीत हो गया तभी कातिवीर्य को व उसकी सारी सेन्ना को अत्यन्त भूख प्यास व्याप्त होने लगी तत्क्षण कार्तिवीर्य ने मुनि जमदग्नि का आश्रम देखकर अपने दो दूतों को उनके आश्रम में यह कहकर भेजा कि मुनि जी से जाकर पूछो कि क्या वह हमारी सारी सेना को पानी आदि पिलाने का साधन कर सकते हैं ।राजा की आज्ञा प्राप्त करके दोनो दूत शीघ्र ही जमदग्नि के आश्रम में पहुंच गये और जाकर उन्होने राजा द्वारा कही गयी सारी वार्ता उनको सुना दी । राजदूतों की वातें सुनकर जमदग्नि ने कहा कि हे दूतो तुम शीघ्र ही अपने राजा से जाकर कह दो कि वह अपनी सारी सेना को अतिशीघ्र मेरे आश्रम में ले आवें मैं उनको खाने पीने के साथ साथ पहुनाई भी करूंगा मुनि जमदग्नि की बाते सुनकर राजदूतों ने अपने स्वामी कार्तिवीर्य अर्जुन के पास पहुंचकर

मुनि जी द्वारा कही गयी सारी कहानी सुना दी तो कार्तिवीर्य अर्जुन अपनी सारी सेंना को साथ लेकर महात्मा जमदग्नि के आश्रम में पहुँच गया ।

श्री नारायण बोले, कि हे नारद मुनि जमदग्नि ने अपने यहाँ अतिथि के रूप में आये हुये कार्तिवीर्य अर्जुन को उसकी सेना सहित खाने पीने का पूर्ण प्रबन्ध करके उसकी सारी सेना की पहुँनाई भी की । अति शीघ्र बहुत बड़ा प्रबन्ध देख कर कार्तिवीर्य ने जमदग्नि से पूछा कि हे मुनि जी आपने इतना बड़ा प्रबन्ध अति शीघ्र कैसे कर लिया है सो मुझे अति शीघ्र समझाइये। राजा हयहय की बातें सुनकर जमदग्नि बोले कि मैने कामधेनू गऊ के प्रभाव से यह खाने पीने व पहुनाई का कार्य शीघ्र सम्पन्न कर दिंया है । जमदग्नि की बातें सुन कर कार्तिवीर्य बोला कि हे मुनि, आप तो साधू सन्यासी है आप सोंना चाँदी , हीरा जवाहरात ,राज्य, करोड़ों गऊयें मुझसे ग्रँहण करके इस अपनी कामधेनु की पुत्री नन्दिनी को मुझे प्रदान करो । यदि आप इसे अपनी राजी से मुझे प्रदान नहीं करोगे तो मैं इस आपकी गाय को बलपूर्वक हरण करके अपनी राजधानी महिष्मती नगरी को ले जाऊंगा । कार्तिवीर्य की बातें सुनकर मुनि बोले कि हे राजन, मैं इसे किसी भी कीमत पर आपको प्रदान नहीं कर सकता हूँ क्योंकि यह कामधेनु की पुत्री नन्दिनी मेरा सर्वस्व है ।

हे नारद जमदग्नि की बातें सुनकर कार्तिवीर्य अर्जुन उनकी कामधेनु का बल पूर्वक हरण करके ले चला । वेवस होकर जमदग्नि ने सोचा कि अब मैं अकेला क्या करूं मेरे पुत्र भी बाहर

भ्रमण करने को चले गये हैं यह राजा अत्यन्त नीच है,मैने इसको सभी प्रकार का सुख प्रदान किया फिर भी नीचों की भांति मेरी प्यारी कामधेनु का हँरण करके ले जा रहा है । इस सम्बन्ध में तुलसीदास भी लिखते हैं कि –

चौ. जेहिते नीच बढ़ाई पावा ।
सो प्रथमहि हठि ताहि नसावा ।।
सुन खगपति अस समुझि प्रसंगा ।
बुध नहिं करहें अधम कर संगा ।।

जमदग्नि इतना सोच ही रहे थे कि भ्रमण करके अचानक परशुराम जी लौटकर अपने आश्रम में आ पहुचें । आकर उन्होने देखा कि कामधेंनु के सोच में माँता पिता दोनों व्यतिथ हैं । परशुराम जी के पूछने पर जमदग्नि ने उन्हें सारा समाचार कामधेनु के हँरण का आदि से अन्त तक बता दिया । अपने पिताजी की दुखित कहानी सुनकर श्री परशुराम जी अकेले ही महिष्मती नगरी को चले गये और कार्तिवीर्य अर्जुन को मारकर उससे कामधेनु को लाकर पिता को समर्पित कर दिया परन्तु जमदग्नि ने परशुराम जी से कहा कि हे पुत्र तुमने राजा का वध कर डाला है इसी कारण तुमको व्रह्मम हत्या जनित पाप लग गया है । तुम इसके प्रायश्चित करने के लिये कोई उपाय करो।

अपने पिता की बातें सुनकर श्री परशुराम जी त्रिलोकी का भ्रमण करने के लिये चले गये और त्रिलोकी के भ्रमण करने के उपरान्त महेन्द्राचल पर्वत पर पहुँच गये और वहीं पर वह निवास करने के पश्चात् पुष्कर तीर्थ में जाकर गायत्री देवी के तप में

लीन हो गये फिर उन्होने वहीं निवास करके माँ गायत्री देवी को ही प्रसन्न करके हर असँभव कार्य को सँभव करने का वरदान माँ गायत्री देवी से माँग लिया और माँ गायत्री देवी ने भी उन्हें उनका मनोवाँछित वरदान प्रदान कर दिया था । अब परशुराम जी पुष्कर में ही रहकर वहीं मां गायत्री देवी के तप में लीन होकर निवास करने लगे ।

श्री नारॉयण बोले कि हे नारद जी, एक दिन जमदग्नि समाधि में बैठे थे कि पूर्व के पिता के वैर के कारण कार्तिवीर्य के पुत्रों ने श्री जमदग्नि का सिर काट लिया और उसे लेकर अपनी राजधानी को चले गये , अपनी राजधानी में पहुंचकर एक बरी के वृक्ष के ऊपर श्री जमदग्नि के सिर को टाँग दिया । अपने पति का मरण देख कर रेंणुका ने भारी रूदन करके अपने पुत्र परशुराम का योगवल से स्मरण किया तो श्री परशुराम जी अतिशीघ्र अपने मन की गति से चलकर अपने पिता के आश्रम में आ पहुचें परसराम की माँता ने अपने पुत्र को आया हुआ देखकर अपनी छाती को 21 बार अपने हाथों से ही पीटा था । इसी कारण परशुराम ने 21 बार में ही हयहय वँशी क्षत्रियों को पृथ्वी से समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी और अपनी माँता की आज्ञा लेकर हाथ में फरसा उठा लिया और महिष्मती नगरी पर जाकर अकेले ही आक्रमण कर दिया । श्री परशुराम के इस आक्रमण से कार्तिवीर्य अर्जुन के सभी पुत्र मारे गये उन सभी को मारकर श्री परशुराम जी अपने पिता के शीश को बरी के वृक्ष से उतार कर अपने आश्रम में ले आये तथा अपने पिता के धड़ पर रख कर पिता को महामृत्युजंय मंत्र से जिन्दा कर दिया । अपने

पुत्र परशुराम का यह आश्चर्ययुक्त चरित्र देख कर उनकी माँता रेंणुका अत्यन्त प्रसन्न हुई तभी पिता जमदग्नि ने परशुराम को 21 बार पृथ्वी को हयहय वंशी क्षत्रियों से विहीन करने का वरदान देकर वह स्वयँ सप्तऋषियों में जाकर सम्मिलित हो गये । रैंणुका अपने पुत्रों के पास ही निवास करने लगी । माँ गायत्री देवी व पिता के वरदान से श्री परशुराम ने हयहय वँशी क्षत्रियों का इस पृथ्वी से 21 बार अपने फरसे से विनाश करके अपनी माँता की प्रतिज्ञा पूर्ण कर दी अब सुख पूर्वक सभी अपने आश्रम में निवास करने लगे । परन्तु श्री परशुराम अपना कार्य पूर्ण करके फिर महेन्द्राचल पर जाकर तपस्या करने लगे ।

नोटः 21 बार सारी पृथ्वी से हयहय वंशी क्षत्रियों का समूल विनाश करने की पृथम कथा समाप्त हुयी ।

श्री परशुराम जी द्वारा पृथ्वी को 21 बार हयहय वंशी क्षत्रियों से विहीन करने की द्वितीय कथा –

श्री नारायण बोले कि हे नारद जी मुनि जमदग्नि ने अहेर से लौटते हुए हयहय वँशी कार्तिवीर्य अर्जुन को भोजन व जलपान करा कर उनकी पहुँनाई भी की , तो आश्चर्य चकित होकर महिष्मती नगरी के राजा हयहय ने जमदग्नि से पूछा कि हे मुनि आपने इतना प्रबन्ध मेरी इस महती सेना का किसके प्रभाव से कर दिया । कार्तिवीर्य की बातें सुनकर जमदग्नि बोले कि मैने इस अपनी प्रिय कपिला गऊ के प्रभाव से इतना बड़ा साधन आपके लिये जुटा दिया है जमदग्नि की बातें सुनकर कार्तिवीर्य अर्जुन सेना सहित अपनी महिष्मती नगरी को चला गया । कार्तिवीर्य

अर्जुन दत्तात्रेय का शिष्य था । दत्तात्रेय ने इसे अमोघ कवच प्रदान करके इसे युद्ध से अभय किया था ।

अपनी नगरी में पहुँचकर कार्तिवीर्य ने अपना एक दूत जमदग्नि के आश्रम को भेजकर उनसे यह कहलवाया कि या तो आप मुझे अपनी प्रिय कपिला गऊ प्रदान कीजिये अन्यथा मुझसे युद्ध कीजिये । कार्तिवीर्य के दूत की बातें सुनकर जमदग्नि उससे कहने लगे कि हे राजदूत अहेर के पश्चात् घर लौटते समय कार्तिवीर्य अर्जुन की मैने सेना सहित सेवा सुश्रुषा तथा पहुनाई भी की थी । इसके प्रतिफल में आपका राजा मुझसे मेरी प्रिय कपिला को बलपूर्वक माँग रहा है । मैं अपनी प्रिय कपिला गऊ को तुम्हारे राजा को कभी प्रदान नहीं कर सकता बल्कि मैं उनसे समर भूमि में युद्ध करूँगा । तुम अपने राजा से यही बात जाकर कह देना । मुनि जमदग्नि की बातें सुनकर दूत महिष्मती नगरी को लौटकर चला गया और उसने राजा हयहय से जाकर सारी बातें बतला दी जो मुनि जमदग्नि से हुई थीं ।

श्री नारायण बोले कि हे नारद इधर जमदग्नि ने अपनी प्रिय कपिला गऊ से कहा कि इस समय मैं क्या करूं देखो जैसे कर्णधार के विना मझधार में नौंका अनियंत्रित रहती है, इस समय वही दशा मेरी भी हो रही है । मेरे पास इस समय कोई भी अस्त्र शस्त्र नहीं है मैं उस हयहय से कैसे युद्ध करूँगा । आर्तवाणी सुनकर कपिला गऊ ने असहाय जमदग्नि को अनेकानेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र प्रदान करके उन्हें युद्ध शास्त्र की पूर्ण शिक्षा का ज्ञान भी तत्क्षँण करा दिया तत्पश्चात् वह गऊ

बोली कि हे मुनि आपकी अवश्य ही जयश्री होगी और अमोघ दिव्यास्त्र के अतिरिक्त आपकी मृत्यु अन्य अस्त्र शस्त्रों से नहीं हो सकेगी । गाय ने और भी कहा कि हे मुनि आप ब्राह्मण है इसलिये आपको दत्तात्रेय के शिष्य कार्तिवीर्य अर्जुन के साथ युद्ध करना शोभा नहीं देगा, क्योंकि दत्तात्रेय ने उसे तप से प्रसन्न होकर एक व्यक्ति को मारने वाली अमोघ शक्ति प्रदान की है । इसी कारण हे मुनि आपको कार्तिवीर्य के साथ युद्ध नहीं करना चाहिये इतना कहकर कपिला गऊ चुप हो गयी ।

हे नारद दूत के श्रीमुख से जमदग्नि का सारा समाचार सुनकर कार्तिवीर्य अर्जुन ने जमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण कर दिया इधर कपिला के प्रभाव से जमदग्नि ने बहुत सी सेना माया से उत्पन्न करके कार्तिवीर्य अर्जुन से डटकर यथाशक्ति युद्ध प्रारम्भ कर दिया । कपिला द्वारा प्रकट की गई सेना के सामने कार्तिवीर्य अर्जुन की सेना को हार खानी पड़ी । जमदग्नि ने कार्तिवीर्य अर्जुन के धनुष कवच को भी चूर चूर कर डाला जिसके फलस्वरूप कार्तिवीर्य अर्जुन मूर्च्छित होकर धराशाही हो गया परन्तु जमदग्नि ने कार्तिवीर्य अर्जुन के ऊपर कृपा करके अपनी चरण धूल दी और उसे आर्शीवाद दिया कि हे हयहय वँशी महाराजा तुम्हारी जय हो । ऐसा कहकर मुनि जी ने अपने कमण्डल से राजा के ऊपर जल सिंचन किया, तभी उसे चेतना आ गई तत्क्षँण कार्तिवीर्य ने जमदग्नि को प्रणाम किया तत्पश्चात् मुनि ने राजा को अपने आश्रम में शेष बची हुई सेना के साथ भोजन आदि भी कराया क्योंकि ब्राह्मणों का हृदय मक्खन के समान कोमल होता है और दुष्टों का व अन्य जातियों का हृदय

सदैव क्षुरधार के सदृश तेज असाध्य और दारूण होता है । तत्पश्चात् मुनि ने कार्तिवीर्य अर्जुन को अपनी राजधानी लौट जाने की उचित राय प्रदान की ।

श्री नारायण बोले कि हे नारद जी, मुनि के द्वारा उपरोक्त सभी वृतान्त कहने के पश्चात् भी कार्तिवीर्य अर्जुन अपनी राजधानी महिष्मती नगरी को लौटकर नहीं गया, और मुनि से बोला कि हे मुनि या तो मुझे अपनी कपिला गऊ प्रदान कीजिये अन्यथा फिर मुझसे युद्ध कीजिये । राजा की वाँणी सुनकर मुनि जी ने उससे कहा कि हे राजन अब आप अपने घर जाकर सनातन धर्म की रक्षा करो । धर्म के बने रहने पर सारी सम्पत्तियां सदैव धर्मावलम्बी के घर व उसके राज्य में स्थिर रहती हैं । यह सब कुछ न सुन समझ कर राजा ने मुनि के ऊपर फिर आक्रमण कर दिया तो जमदग्नि भी उससे विवश होकर युद्ध करने लगे क्रोध के कारण राजा बुद्धिहीन हो गया, और मुनि से समर में जूझने लगा, परन्तु अस्त्र-शस्त्रों से राजा को मुनि ने फिर मूर्च्छित कर दिया परन्तु मूर्च्छा जागने पर कार्तिवीर्य अर्जुन फिर से मुनि जी से युद्ध करने लगा, और राजा ने मुनि के ऊपर अस्त्र शस्त्रों का प्रहार आरम्भ कर दिया । परन्तु जमदग्नि ने कार्तिवीर्य अर्जुन के सारे अस्त्र शस्त्र अपने दिव्य अस्त्रों से नष्ट भ्रष्ट कर डाले । फिर भी मुनि ने कार्तिवीर्य को अभयदान प्रदान किया । परन्तु वह दुष्ट नहीं माना तब परम पिता ब्रह्मा बाबा ने समर भूमि में आकर राजा व मुनि राज को समझा वुझा कर अपने अपने गँतव्य स्थानों को भेज दिया । जिसके कारण कुछ दिन तो राजा

शान्त रहा परन्तु यकायक एक दिन उसके मन में जमदग्नि से कपिला गऊ को प्राप्त करने की लालसा फिर उत्पन्न हो गयी ।

श्री नारायँण बोले कि हे नारद जी फिर महती सेना लेकर कार्तिवीर्य अर्जुन ने जमदग्नि के आश्रम पर पुरजोर धावा बोल दिया अब दोंनो ओर से घोर सँग्राम होने लगा । जिसके फलस्वरूप जमदग्नि ने कार्तिवीर्य को कई बार फिर रणभूमि में परास्त करके उसे शरण प्रदान की । परन्तु एक बार बौखलाकर कार्तिवीर्य अर्जुन ने दत्तात्रेय मुनि द्वारा प्रदत्त एक पुरूष को नष्ट करने वाली अमोघ शक्ति का प्रयोग मुनि जमदग्नि के ऊपर कर डाला यह शक्ति भगवान विष्णु की थी । उसके लगते ही जमदग्नि प्राँण त्यागकर स्वर्गगामी हो गये, और वह शक्ति भी भगवान विष्णु के पास चली गयी । सारे संसार में हाहाकार मच गया और कपिला गऊ तात हातात इस प्रकार पुकारती हुई श्री वासुदेव जी के धाम गोलोक को प्रस्थान कर गयी तो राजा अपनी राजधानी महिष्मती नगरी को कपिला गऊ के प्राप्त न होने पर विमन होकर लौटकर चला गया, और मुनि जमदग्नि से युद्ध करने का अपने मन में भारी पश्चाताप भी करने लगा ।

इधर अपने पति का युद्ध के मैदान में मरण सुनकर पतिव्रता रैंणुका करूण क्रन्दन कर करके रोने लगी , और उसने अपने पुत्र परशुराम को मन ही मन में स्मरण किया । रैंणुका की पुकार श्री परशुराम जी ने पुष्कर क्षेत्र में सुनी तो तत्क्षँण अपने मन की तीव्र गति से चलकर माँता के सामने अपने आश्रम में उपस्थित हो गये । श्री परशुराम को अपने सामनें उपस्थिति देखकर रेणुका ने

अपनी छाती को अपने हाथों से ही 21 बार पीटकर बन्द हो गयी । छाती पीटने में जो भाव छिपा था उसको मैं आगे बता रहा हूँ उसको ध्यान पूर्वक पढ़ें व सुनें ।

प्रश्नः श्री परशुराम जी की माँ रैंणुका ने श्री परशुराम को देखकर 21 बार ही अपनी छाती को क्यों पीटा था कम या ज्यादा क्यों नहीं पीटा था ?

उत्तरः श्री नारायण बोले कि हे नारद आगे की कथा ध्यान पूर्वक सुनो श्री परशुराम जी के पिता जमदग्नि ने अपनी प्रिय पत्नी रैंणुका को साथ लेकर 21 पवित्र नदियों के धर्मक्षेत्र में तपस्या की थी और इन्ही 21 नदियों के धर्मक्षेत्र में सभी हयहय वँशी क्षत्रिय निवास करते थे इसलिये 21 बार अपनी छाती पीट पीट कर परशुराम जी को उनकी माँता बताती हैं कि हे पुत्र तुम इन्ही 21 नदियों व तीर्थ स्थानों के धर्म क्षेत्रों में निवास करने वाले सभी हयहय वँशी क्षत्रियों का समूल नष्ट कर डालो । अपनी माँता रैंणुका की भावना को जानकर ही श्री परशुराम जी ने अपनी माता के सम्मुख 21 बार में बारी बारी से प्रति नदी के धर्मक्षेत्र में निवास करने वाले सभी हयहय वँशी क्षत्रियों को समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा अपनी माँता के सम्मुख की थी । इसके उपरान्त परशुराम की माँता ने हयहय वंशी क्षत्रियों को समूल नष्ट करने के लिये अपने पुत्र श्री परशुराम जी से निषेध भी किया था परन्तु वह अपनी माँता से बोले कि हे माते, जो पिता की आज्ञा भँग करता है और पिता के हिंसक का वध नहीं करता है, वह पुत्र महान मूर्ख होता है और उसे मरणोंपरान्त

रौरव नरक को जाना पड़ता है । और भी सुनो आग लगाने वाला, विष देने वाला , हाथ में अस्त्र लेकर मारने के लिये आने वाला, धन का चुराने वाला, आदि आदि ये घोर पापी वेद और पुराणों में कहे गये हैं उपरोक्त ये सभी वध करने योग्य होते हैं श्री परशुराम जी की यह बातें सुन कर उनकी माता उनसे बोली कि हे पुत्र श्री कृष्ण पूजन स्तोत्र व उनकी कृपा से तथा मेरे व शिव जी के आर्शीवाद से तुम सुख पूर्वक अनायास ही सारे भूमण्डल को 21 बार में हयहय वंशी क्षत्रियों से शून्य कर डालोगे ।

श्री नारायण आगे कथा सुनाने लगे कि हे नारद माता के आर्शीवाद प्राप्त होते ही श्री परशुराम जी को मंगलमय शकुन होने लगे व जय सूचक शब्द सुनाई देने लगे, तभी अंपने मन में परशुराम जी ने दृढ़ निश्चय किया कि मेरी जीत अवश्य ही होगी और शत्रुओं का संहार मेरे द्वारा अवश्य होगा । तत्क्षण उसी स्थान पर परशुराम के गुरू जी शिव जी ने आकर उनसे कहा कि हे भृगुनन्दन तुम अपने पिता को दक्षिण की ओर सिर करके चिता बनाओ और दक्षिणाभिमुख होकर अपने आंसू रोक कर तुम भी उत्तर की ओर मुख करके बैठ जाओ और इस भूमण्डल पर जो 21 तीर्थ हैं जिनको तुम्हारे पिताजी की मृत्यु के समय तुम्हारी माता ने उन्हें याद किया था । उन सभी 21 तीर्थों का तुम भी स्मरण करो । शिव जी की आज्ञा मान कर परशुराम जी ने सरिताओं में श्रेष्ठ 1— गंगा, 2—यमुना, 3—कौशिकी, 4— चन्द्रभागा, 5—गन्डकी, 6—काशी, 7—पनसा, 8—सरयू, 9—पुष्पभद्रा, 10—नर्मदा,

11—सरस्वती, 12—गोदावरी, 13—भद्रा, 14—कावेरी, 15—स्वर्णरेखा, 16—पुष्करणी, 17—रैवत, 18—वराह, 19—क्षिप्रा, 20—शैलनन्दिनी, 21—वेत्रवती, आदि आदि तीर्थ स्थलों व नदियों का चिन्तन किया व सभी नदियाँ मानसी रूप धारण करके श्री जमदग्नि के आश्रम में आ गयीं । तभी रेणुका ने अपने पुत्र श्री परशुराम जी को अपनी छाती से लगा लिया तत्पश्चात् अपने पति जमदग्नि के साथ चिता में बैठकर सती हो गयीं इस प्रकार श्री परशुराम जी के माता व पिता दोनो ने गोलोक धाम को प्राप्त किया । तत्पश्चात् शिव जी सहित सभी मानसी तीर्थ व नदियां अपने अपने स्थानों को चले गये ।

हे नारद अपने माता पिता की प्रेत क्रिया करने के पश्चात् उपरोक्त बताए हुए इक्कीस तीर्थ स्थलों के क्षेत्रों में निवास करने वाले समस्त हयहय वंशी क्षत्रियों का श्री परशुराम जी ने बारी बारी से 21 बार में ही समूल विनाश करके कुरू क्षेत्र में नौ सौर्णित के कुन्ड भर डाले फिर उन्होने कुरूक्षेत्र में ही एक व्रहद विष्णु यज्ञ किया उस यज्ञ में कश्यप जी ने आकर श्री परशुरामं जी से सारी पृथ्वी को उनसे दान में मांग लिया । परशुराम जी ने भी श्री कश्यप जी को सारी पृथ्वी को दान में दे दिया । तभी से पृथ्वी कश्यप जी की पुत्री "कश्यपी" नाम से संसार में प्रसिद्ध हुयी । सारी पृथ्वी को दान करके श्री परशुराम जी फिर महेन्द्राचल पर तप करने चले गये । वह वहां पर आज भी तपस्या में लीन हैं ।

उपरोक्त 21 पवित्र नदियों के धर्म क्षेत्र के मध्य में समस्त हयहय वँशी क्षत्रिय निवास करते थे । इन्ही 21 नदियों के धर्म क्षेत्रों में अपनी प्रिय पत्नी रैंणुका को साथ लेकर श्री जमदग्नि ने जप तप किया था और हयहय वँशी कार्तिवीर्य अर्जुन ने ही श्री जमदग्नि का समर भूमि में वध कर दिया था, इसी कारण श्री परशुराम की माँ उनके सम्मुख 21 बार अपनी छाती को पीट–पीट कर उन्हें वताती हैं कि हे पुत्र उपरोक्त 21 नदियों के धर्मक्षेत्र में सभी हयहय वंशी क्षत्रिय निवास करते हैं उन सभी का समूल नष्ट कर डालो इसी कारण रैंणुका ने अपने पुत्र परशुराम को देखकर इक्कीस बार अपनी छाती को अपने ही हाथों से पीटा था, 21 बार से अधिक व कम बार नहीं पीटा था श्री नारायण बोले कि हे नारद जी जो आपने मुझसे पूछा था वह सभी सम्पूर्ण वृतान्त मैंने तुम्हें आदि से अन्त तक का बता दिया है ।

नोटः उपरोक्त कथायें कल्प भेद से अलग–अलग हैं इसलिये श्रोताओं व वक्ताओं को संसय नहीं करना चाहिए । इस बात की पुष्टि तुलसीदास जी भी करते हैं –

चो. – कल्पभेद हरि चरति सुहाये ।
नाँना भाँति मुनीशन गाए ।।
करियन सँसय अस उरआँनी ।
सुनिये कथा सादर रति मानी ।।

प्रश्न 1: श्री जनक जी के यहाँ धनुष यज्ञ में तोड़े गये धनुष की व परशुराम जी के धनुष की उत्पत्ति की द्वितीय कथा ।

उत्तर :— मिथिलापुरी में सीता स्वयंवर एक वर्ष चला था , जब सीता जी के स्वयंवर का एक दिन अवशेष था , उसी दिन श्री राम चन्द्र जी ने अपने गुरू विश्वामित्र जी की आज्ञा से, धनुष यज्ञ में रखे शिव जी के धनुष को पल मात्र में ही तोड़ डाला था । धनुष के टूटने की आवाज सुनकर महेन्द्राचल पर्वत पर तपस्या करने वाले श्री परशुराम जी ने यह समझकर कि मेरे गुरू जी शिव जी का धनुष किसी ने तोड़ डाला है । वह भीषण आवाज उसी के टूटने से संसार में गुंजायान हो रही है, यही सोच कर श्री परशुराम जी अपनी माँनसिक गति से चल कर अति शीघ्र मिथिलापुरी में आकर स्थिति हो गए और लक्ष्मन जी से वार्ता करने के पश्चात् , वह श्री राम चन्द्र जी से वार्ता करने लगे । जिसका वर्णन मैं पहले ही विस्तार से कर चुका हूँ ।

जब श्री राम चन्द्र जी का परशुराम जी से शान्त होकर वार्तालाप होने लगा; तब श्री राम चन्द्र जी ने श्री परशुराम जी से कहा कि हे जमदग्नि कुमार सीता स्वयँवर में रखे गये धनुष की उत्पत्ति मुझे विस्तार से वताने का कष्ट करें ।

श्री राम चन्द्र जी का प्रश्न सुनकर श्री परशुराम जी उन्हें उपरोक्त दोनो धनुषों की उत्पत्ति विस्तार से बताने लगे ।

श्री परशुराम जी वोले कि हे दशरथ नन्दन, सुनिये, जो यह मेरे पास धनुष है उसको व सीता स्वयंवर में रखे गये धनुष को देवताओं के आग्रह पर विश्वकर्मा ने बनाया था । ये दोनो धनुष बड़े प्रवल और दृढ़ थे । इन्ही दोनो धनुषों में से, एक धनुष को

इन्द्रादि देवताओं ने त्रिपुरों को मारने के लिये शिव जी को प्रदान किया था, जो श्री जनक जी के धनुष यज्ञ में रखा गया था, यह वही देवों द्वारा प्रदत्त शिव जी का धनुष था, जिसे इन्द्रादि देवताओं ने त्रिपुरों को समूल नष्ट करने के लिए शिव जी को प्रदान किया था ।

श्री परशुराम जी वोले कि हे राम यह दूसरा धनुष उन्ही में से मेरे पास है ।। इसी धनुष को सर्वप्रथम सभी इन्द्रादि देवताओं ने श्री विष्णु जी को प्रदान किया था । इसी वैष्णव धनुष से मैने महिष्मती नगरी के राजा कार्तिवीर्य अर्जुन को कुल सहित समूल नष्ट कर दिया था । यह वही वैष्णव धनुष मेरे पास है । यह धनुष भी शिव जी के धनुष के सदृश प्रबल है । हे राम, उसी समय इन्द्रादि सभी देवताओं ने ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे पूछा था कि हे ब्रह्मा बाबा शिबजी व विष्णु जी दोनो महादेवताओं में कौन अधिक बलसाली है । सभी देवताओं की वार्ता सुनकर जगत श्रृष्टा ब्रह्माजी ने श्री शिवजी व विष्णुजी में अपनी मारया से विरोध उत्पन्न करा दिया ।

हे राम, ब्रह्मा जी द्वारा शिव जी व विष्णु जी में, विरोध उत्पन्न करा देने के पश्चात् दोंनो महादेवताओं में सारे सँसार के मनुष्यों व देवताओं के रोंगटे खड़े कर देने वाला घनघोर सँग्राम प्रारम्भ हो गया था । इस युद्ध के प्राँगण में, विष्णु जी ने शिव जी को उनके धनुष सहित एक ही हुँकार मात्र से स्तम्भित कर दिया था , तत्क्षँण इन्द्रादि सभी देवताओं ने और ऋषी मुनियों ने युद्ध के मैदान में आकर शिव जी व विष्णु जी की आर्न्तवाणीयों से आरजू व विनती की, तभी वह युद्ध शान्त हुआ

था । युद्ध शान्त हो जाने के पश्चात् शिव जी ने नाराज होकर अपना धनुष, जनकपुरी के राजा निमि के पुत्र देवरात के पास धरोहर के रूप में रख दिया था ।

श्री परशुराम जी श्री राम चन्द्र जी को आगे कथा वताने लगे कि हे राम, यह मेरे पास जो धनुष है । इसे विष्णु जी ने युद्ध के मैदान में शिव जी को जीत लेने के पश्चात्, इन्द्रादि देवताओं को दे दिया था, और देवताओं ने इसी वैष्णव धनुष को मेरे पूर्वज भृगुवन्शी महात्मा रिचीक ऋषी के पास धरोहर के रूप में रख दिया था । मेरे बाबा रिचीक ऋषी से मेरे पिताजी जमदग्नि के पास आया, और मुझ परशुराम को मेरे पिता श्री जमदग्नि से प्राप्त हुआ है ।

हे श्री राम, जब मेरे पिताजी जमदग्नि समस्त अस्त्र शस्त्रों को त्याग कर अपने ही आश्रम में तपस्यारत थे, तभीं महिष्मती नगरी के राजा कीर्तिवीर्य अर्जुन ने सेना सहित उनके आश्रम में आकर ,पुराने वैर को स्मरण करके, मेरे पिताश्री का वध कर डाला , तो मैने इसी वैष्णव धनुष से उस महापापी कार्तिवीर्य अर्जुन को समस्त परिवार व सेना सहित सभी को समूल युद्ध के मैदान में नष्ट कर दिया और उन हयहय वंशी कार्तिवीर्य अर्जुन के गोत्रीय सभी क्षत्रियों को 21 बार में खोज खोज कर समूल नष्ट कर दिया, जिसके फलस्वरूप मैने कुरुक्षेत्र में नौ सौंणींत के कुन्ड भर दिये थे ।

हे राम फिर सारे भूमन्डल को अपने अधिकार में करके मैने कुरु क्षेत्र में एक वृहद विष्णु यज्ञ भी किया था । इसी यज्ञ के

अन्त में ब्रह्माजी के पौत्र कश्यप जी ने आकर मुझसे सारे भूमण्डल को दान में माँग लिया था और मैं भी सारे भूमण्डल को उन्हें दान में देकर स्वँय महेन्द्राचल पर तप करने को चला गया था । उस महेन्द्राचल पर्वत पर ही मैने सुना था कि आपने वही शिव जी वाला धनुष , जनक जी के धनुष यज्ञ में आकर तोड़ डाला है । जिसे देवताओं ने श्री जनक जी के पूर्वजों को धरोहर के रूप में सुरक्षित रखने के लिये प्रदान किया था । यह वही शिवजी का धनुष था जिसे आपने तोड़ डाला है । हे राम, जो यह मेरे पास वैष्णव धनुष है, इसे अपने कर कमलों में ग्रहँण करो, यदि आप इस मेरे वैष्णव धनुष पर प्रत्यँचा चढ़ा देगें तो मैं परशुराम यह समझ लूँगा कि आप ही साक्षत् विष्णु स्वरूप, श्री राम के स्वरूप में अयोध्यापुरी में आकर प्रकट हो गये हो ।

श्री परशुराम जी की उपरोक्त वार्ता सुनकर श्री राम चन्द्र जी ने उनके कर कमलों से वही अपना वैष्णव धनुष अपने हाथों में ग्रहण करके उस पर पल मात्र में ही प्रत्यन्चा चढ़ा दी , उसी क्षण श्री परशुराम को अपनी प्रदत्त वैष्णव शक्ति भी उनके शरीर से खींचकर अपने शरीर में विलीन कर ली, तभी श्री राम चन्द्र जी ने उनसे कहा कि हे जमदग्नि कुमार आप ब्राह्मण कुमार है इसी कारण मेरे गुरू विश्वामित्र से आपका सगा सम्बन्ध है और वह आपके सगे सम्बन्धी भी हैं । इसी कारण इस धनुष की प्रत्यन्चा पर जो वाँण मैने चढ़ाया है उसे तुम्हारे ऊपर नहीं चलाऊंगा , बल्कि आपके तीव्र गति से आने के काँरण जो धूल सहित आँधी आपके आगमन से यहां आपके साथ आ गई है उसी को इस धनुष वाँण से नष्ट किये देता हूँ तत्क्षण इतना कहकर

उस बाँण को चलाकर उपरोक्त अन्धकार को अति शीघ्र नष्ट कर दिया ।

अन्त में श्री राम चन्द्र जी ने श्री परशुराम जी की पूजा की, तत्क्षण श्री परशुराम जी श्री राम चन्द्र जी की जय जय कार करते हुए महेन्द्राचल पर्वत पर फिर से तप करने चले गए हैं । श्री रामचन्द्र जी ने इसी परशुराम से प्राप्त हुए धनुष को अन्त में श्री वरूण भगवान को सौंप दिया था ।

आध्यात्मिक भजन

टेक

तैंनें कीयौ न भजनवा, कैसे बीतेगी ।
जइयौ यम के जब, भवनवा कैसे बीतेगी ।।

भजन

सहि न सकौ तू कष्ट गर्भ के, किया था कौली करार ।
प्रभू तुम्हारा भजन करूँगा, करौ नरक से पार ।
बायदा भूलौ रे वेइमनवा, कैसें वीतेगी,तैंनें कीयौ न
भजनवा कैसें बीतेगी जइयो यम के जब भवनवा
कैसे बीतेगी ।। 1 ।।

बाल उमरि हँसि खेलि गवाँई, आई मस्त जवानी ।
माँत–पिता ने करी सगाई, दुल्हा ब़नैं गुमानी,
बधिं गयौ हाथन में कँगनवा, कैसें वीतेगी
तैने कियो न भजनवा कैसें वीतेगी
जइयो यम के जब भवनवा कैसें बीतेगी ।। 2 ।।

धूमधाम से व्याह रचाया, पहरि केशरी जामा ।
दुलहिंन लैकें घर को आया, खत्म हुआ तेरा ड्रामा ।।
बनि गए सजनी के सजनवा, कैसे वीतेगी, तैंनें कीयौ
न भजनवा कैसें बीतेगी जइयो यम के भवनवा
कैसें बीतेगी ।। 3 ।।

विषयों का विष पी पी करके, दिन दिन हुए दिमाने ।
बालक थे फिर बाप कहाये, बाबा लगे कहाने ।।

आइ गयौ नीयरौ चौथौ पनवा, कैसें बीतेगी, तैनें कीयौ न भजनवा कैसें बीतेगी जइयो यम के भवनवा कैसें बीतेगी ।। 4 ।।

कमर कमान दाँत सब टूटे, नजर गयी नजरानें ।
खाट विछाइ द्वार पर पड़ि गए, बहुऐं मारें ताँने ।।
कबहूँ मरि हैं ये वुढ़नवा, कैसे बीतेगी, तैनें कियौ न भजनवा कैसें बीतेगी, जइयौ यम के जब भवनवा कैसें बीतेगी ।। 5 ।।

अब भी सोच समझ ले मूरख, कहता मेरा मेरा ।
राम भजन के बिना न होगा, नर तेरा निरवेरा ।।
कर ले अब भी कछू जतनवा कैसें बीतेगी, तैनें कीयौ न भजनवा कैसें बीतेगी । जइयो जब यम के भवनवा कैसें बीतेगी , तैनें कियौ न भजनवा कैसें बीतेगी ।। 6 ।।

समस्त काव्य के
लेखक व सँकलनकर्ता–
जगतनरायन उपाध्याय
पशु हाट मालिक,
ग्राम–श्रीनगर पचोखरा जिला फिरोजाबाद उ.प्र.

पाठकगणों से विनम्र निवेदन

प्रिय बन्धुओ, उपरोक्त आध्यात्मिक भजन के अर्थ को सोच समझ कर निराकार या साकार ब्रह्म का भजन व चिन्तन करके उन्ही परब्रह्म के धाम को प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयत्न करो और उन्ही परब्रह्म में लीन होकर कैवल्य मुक्ति प्राप्त करो, तभी मनुष्य को अपने जीवन मरण का सार्थक फल व लाभ प्राप्त होगा । इसी आध्यात्मिक भजन के उपरान्त मैं श्री परशुराम जी के सम्पूर्ण जीवन परिचय को अपनी अल्प वुद्धि के अनुसार लिपिवद्ध करके अपनी लेखनी को विराम देता हूँ । मेरे इस लेख में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो आप सभी महानुभाव मुझे क्षमा करने का कष्ट करें, तथा पत्र द्वारा मुझे सूचित भी करने का कष्ट करें ताकि मैं अगले सँस्करण में अपनी उस भूल का सुधार कर सकूँ ।

उपरोक्त सभी आशाओं के साथ मैं अपनी इस पुस्तक को अपने परम आदरणीय सद्गुरू श्री माधव चैतन्य ब्रह्ममचारी जी के चरण कमलों में अर्पित करता हूँ, उन्ही सद्गुरू की महती कृपा से मैने श्री परशुराम जी के सम्पूर्ण आदर्श जीवन चरित्र को इस पुस्तक में आदि से अन्त तक लिपिवद्ध किया है । मेरे सद्गुरू करपात्री कुन्ज, परिक्रमा मार्ग, सोहम आश्रम के निकट वृन्दावन धाम में निवास करते हैं ।

दोहा –

आज का राजा कोई और है, कल होगा कोई और।
सदाँ किसी के शीष पर धरौ रहै ना महौर ।।

आया है सो जायेगा, राजा रंक फकीर ।
एक सिंहासन पर चढ़ैं, एक बधैं जंजीर ।।

श्री सरस्वत्यै नमः

श्री गणेशाय नमः

ऊँ नमो श्री वासुदेवाय

ऊँ नमः शिवाय

लेखक — जगत नरायन उपाध्याय

ओउम् शान्तिः ! शान्ति !! शान्ति !!!

|| इतिश्री ||